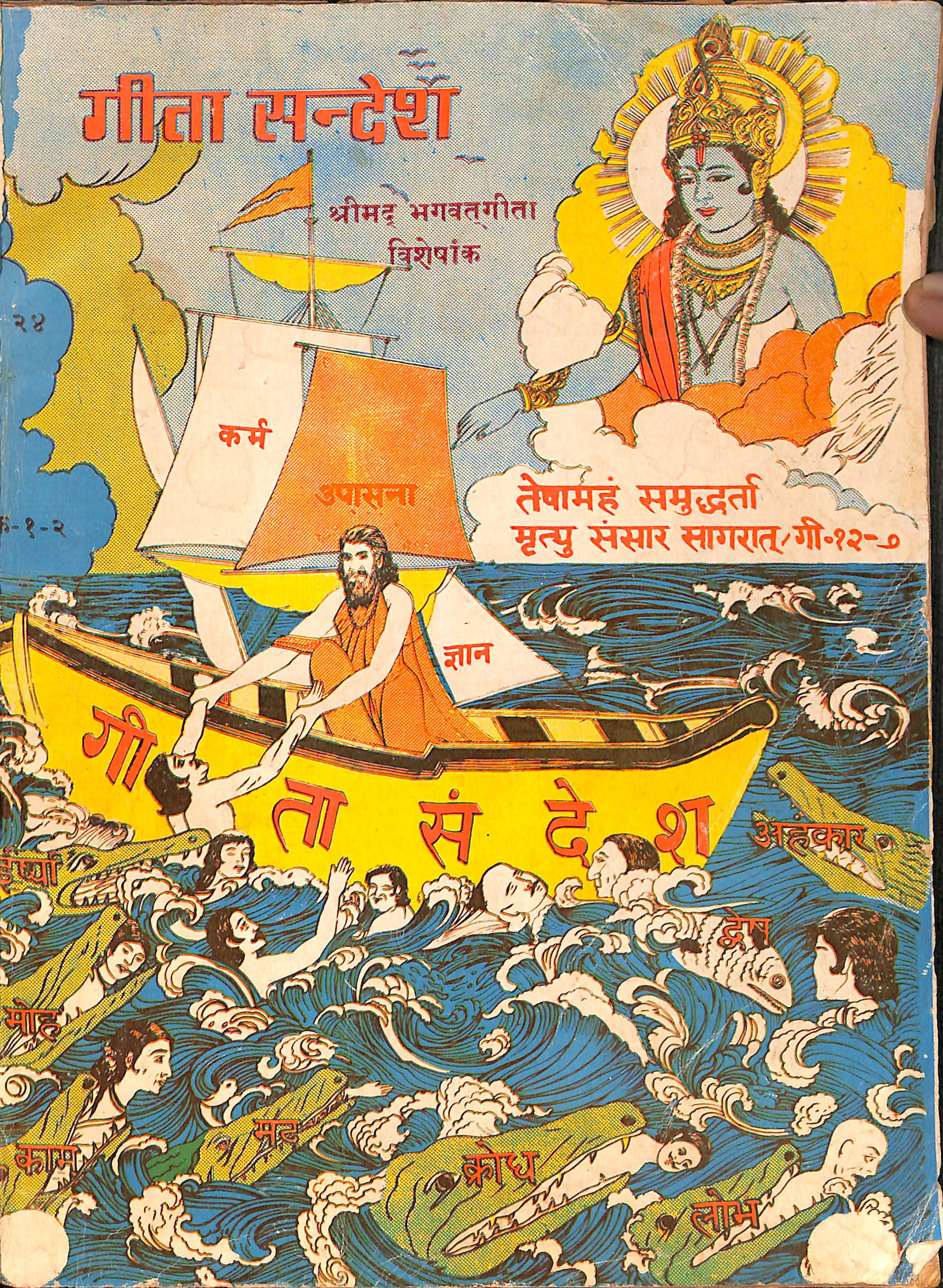
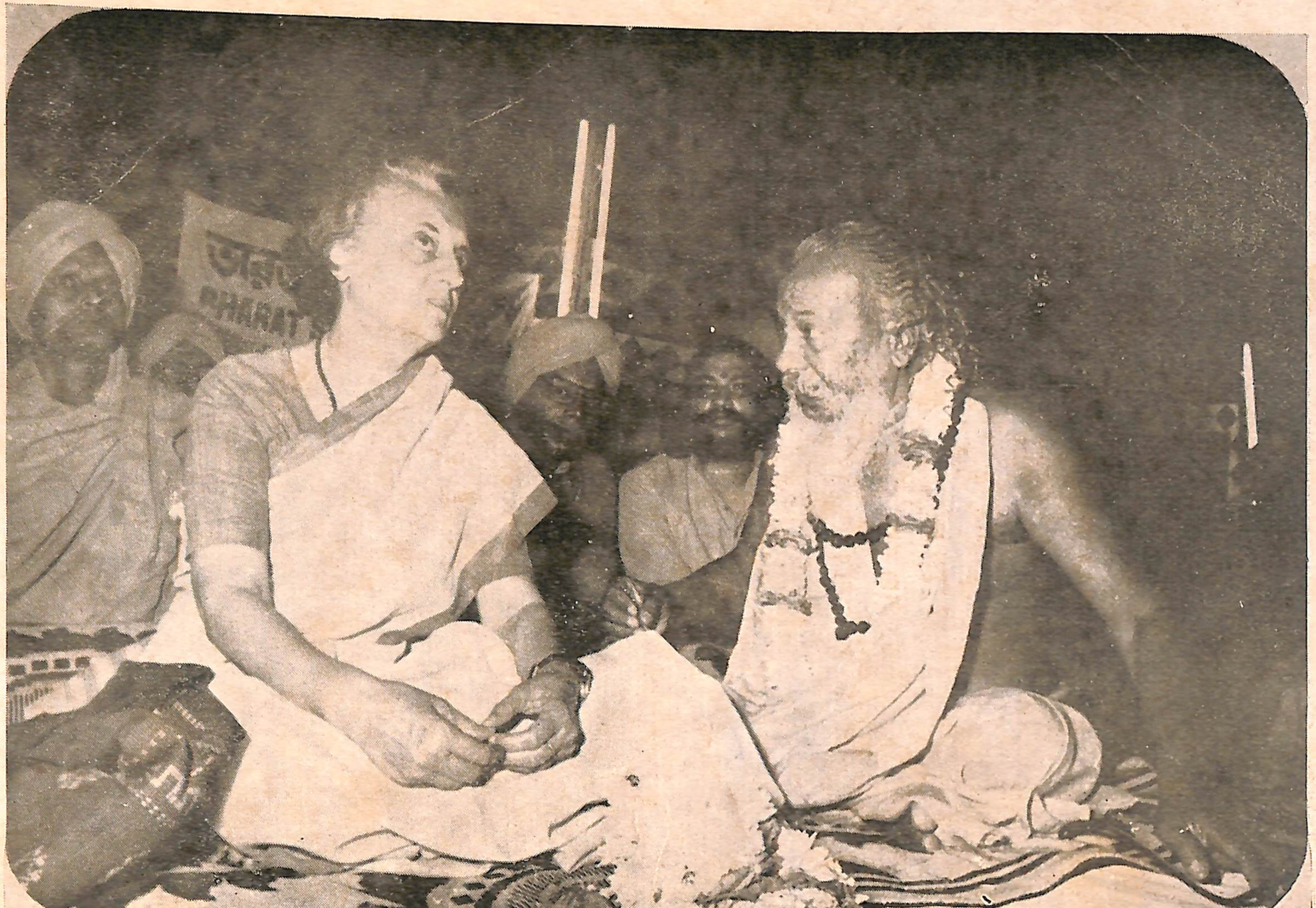
गीता सन्देश।


गीता सन्देश
श्रीमद् भगवतगीता
विशेषांक
२४
-१-२
कर्म
उपासना
ज्ञान
तेषामहं समुद्धर्ता
मृत्यु संसार सागरात्/गी-१२-७
गी ता सं दे श
अहकार
द्वेष
मोह
काम
मद
क्रोध
लोभ



भारत सेवाश्रम संघ नई दिल्ली के मंच पर 'गीता-सन्देश' व 'गीता-ग्राश्रम' हृषीकेश के संस्थापक व संचालक ग्रनन्तश्री बिभूषित म० मं० श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज सरस्वती गत नवम्बर १९७९ में श्रीमती इन्दिरा गांधी जी के साथ गम्भीर विचार-विमर्श करते हुए।

पाठकों से –

❀ नम्र-निवेदन ❀

गीता-सन्देश मासिक पत्र के २४ वें वर्ष का श्रीमद्भगवद्गीताङ्क आपके हाथ में है। इस बार सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता संस्कृत; हिन्दी व इंगलिश अनुवाद सहित पाठकों की सुविधा के लिए संकलित कर प्रकाशित किया गया है। कई वर्षों से पाठकों के पत्र विशेषाङ्क को इस रूप में प्रकाशित करने के लिए हमारे पास आ रहे थे। इसके साथ ही गीता के शोधकर्ता, प्रवक्ता, मीमांसक, तत्त्वज्ञ महापुरुषों के लेख व कवितायें एवं श्री गीता माहात्म्यादि प्रकाशित किये गये हैं, यह अपने ढंग का अनूठा संग्रहणीय ग्रन्थ है।

'विशेषाङ्क' आपके सम्मुख है। कैसा बना है, पाठक इसका निर्णय स्वयं कर लेंगे। सदा की भांति पूज्यपाद गुरुदेव म० मं० श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज की कृपा-किरण से इस विशेषाङ्क ने भी पर्याप्त प्रकाश पाया है। सम्मान्य लेखक, कवि बन्धु तो सदा कृपालु रहते हैं। उनके प्रति भी आभारी हूँ।

यह विशेषाङ्क कई अनिवार्य कारणों (यथा बिजली की कटौती, कार्यकर्ताओं का अभाव, अर्ध-कुम्भ-मेला हरिद्वार) से आपकी सेवा में विलम्ब से भेजा जा रहा है, इसका हमें हार्दिक खेद है। इसके साथ ही इतनी भीषण मंहगाई के उपरान्त केवल १०) रु० में लगभग १८० पृष्ठ के विशेषाङ्क में पिछले वर्षों की अपेक्षा लगभग ५० पृष्ठ अधिक हैं।

कुछ ग्राहकों ने भूल से इस वर्ष चन्दा ६)रु० या ८)रु० भेजा है, उनकी सेवा में भी हम यह विशेषांक भेज रहे हैं, अतः उन महानुभावों से निवेदन है कि 'गीता-सन्देश' का वार्षिक चन्दा १०)रु० है, शेष धनराशि शीघ्र भिजवाने की कृपा करें। हम नहीं चाहते कि इसके लिए आपको कोई स्मृति-पत्र पुनः लिखना पड़े।

इसके साथ ही प्रयत्न करके कम से कम दो-दो नवीन ग्राहक बनाकर उनसे शुल्क भिजवाने की कृपा करें। प्रयत्न करने पर दो नवीन ग्राहक बनाना कोई कठिन कार्य नहीं है। गीता धर्म प्रचार प्रसार के इस महान यज्ञ में आपकी यह महत्त्वपूर्ण आहुति होगी।

निवेदक :– प्रधान-सम्पादक

'गीता-सन्देश'

श्री गीता-आश्रम, पो०–स्वर्गाश्रम, मार्ग–हृषीकेश, (उ०प्र०) टेलीफोन : १२६।

क्या ?	किसका ??	कहां ???

गीता-सन्देश, गीता-आश्रम, हृषीकेश, फोन नं०-१२६ के लिए श्री गीता-मुद्रणालय, श्री गीता आश्रम में श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित।

ॐ तदेकमभवत्, तल्ललाममभवत्, तन्महदभवत्, तज्ज्येष्ठमभवत्, तद्ब्रह्माभवत्, तत्तपोऽभवत्, तत्सत्यमभवत्, तेन प्राजायत, सोऽवर्धत, स महानभवत्, स महादेवोऽभवत्, स देवानामीशां पर्यैत्, स ईशानोऽभवत्, स एकव्रात्योऽभवत्, स धनुरादत्त, तदेवेन्द्रधनुः । (अथर्व० १५।१।३-४-५-६)

वह परमात्मा एक ही अद्वय था, वह ललाम यानी शिवं-सुन्दरं-सुखामृतं था, वह त्रिविध परिच्छेदरहित अनन्त था, वह अति प्रशस्त क्षर एवं अक्षर से अतीत-पुरुषोत्तम था, वह प्रत्यगात्मा से अभिन्न-ब्रह्म ही था, वह स्वयज्योतिश्चैतन्य-तेज रूप था वह त्रिकालाबाधित-सत्य-अखण्डैकरस था तथा है, एवं रहेगा। अनिर्वचनीय माया के सहकार द्वारा वह आकाशादि भूत-भौतिक-जगत्रूप से बिवर्तित हो गया। वह जगत् के विविध नाम-रूप एवं कर्मों के द्वारा बढ़ा चढ़ा हो गया। वह महान् था, निखिल देवपूज्य-महादेव था, या है एवं रहेगा। वह नियन्ता परमेश्वर था, वह एक व्रात्य एक था, या है एवं रहेगा। व्रात्य यानी सत्यादि व्रतों का पालक या सदा पवित्र। वह व्यापक-निराकार ही अपनी-अचिन्त्य शक्ति से साकार बनकर दुष्ट आततायियों के वध लिए दिव्य धनुष को धारण करता है या किया था। जिसकी प्रतिकृति वर्षा के समय 'इन्द्र-धनुष' रूप से प्रतीत होती है।

ॐ यदेजति पतति यच्च तिष्ठति, प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं, तत् सम्भूय भवत्येकमेव ॥
अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य ॥ (अथर्व० १०।७।११-१२)

कम्पनशील, पतनशील एवं स्थिर रहने वाले जितने भी पदार्थ हैं तथा प्राण अपानादि व्यापार करने वाले जरायुज-अण्डजादि जो भी प्राणी समुदाय हैं एवं प्राणादि के व्यापार से रहित जितने भी जड़वर्ग हैं एवं निमेषादि व्यापार करने वाले जो भी मनुष्यादि हैं। तथा उत्पत्तिशील जो भी पदार्थ हैं, उन सबको तथा पृथिवी आदि सभी भूतों को एक ही परमात्मा धारण-पोषण कर रहा है। वह विश्वरूप है सर्वमय है। वे सब पदार्थ मिलकर अन्त में एक-अद्वय परमात्मस्वरूप हो हो जाते हैं। वह ब्रह्म अनन्त है, अनेक असंख्य पदार्थों में वितत है, व्याप्त है। अन्तवाले देहादि पदार्थों में अन्तरहित-अविनाशी-आत्मारूप से सम्बद्ध है इस अद्वय ब्रह्म के मध्य में अवस्थित भूत भविष्यत् एवं वर्तमानरूप कालत्रय-वर्ति-द्वैत जगत् को विवेकज्ञानद्वारा मिथ्यारूप से तथा अधिष्ठानरूप सर्वात्मा ब्रह्म को ही परम सत्यरूप से जानता हुआ विद्वान् निरतिशय-अपरिच्छन्न ब्रह्मसुख का अनुभव करता रहता है।



एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु। बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।

—गीता अ०-२ श्लोक-३९-४०

वर्ष-२४] पौष-माघ सम्वत्-२०३६, जनवरी-फरवरी सन्-१९८० [अङ्क-१-२

मर्म जिसमें है कर्मयोगी की प्रधानता का,
भीरुता की भावना का जिसमें फजीता है।
मानकर प्रमुख प्रमाण पांचों पाण्डवों ने,
प्रबल प्रतापी पापी कौरवों को जीता है॥
रसिकेन्द्र भूलने से जिसका पवित्र ध्येय,
भारत का भाग्यकोष आज पड़ा रीता है।
भक्ति भरो आओ भारतीयो अपनाओ,
फिर वीरों के लिए तो बस सच्चा गुरु गीता है॥

देश-विदेश के विद्वान—

गीता महिमा में

"गीता विवेकरूपी वृक्षों का एक अपूर्व बगीचा है। यह सब सुखों की नींव है। सिद्धान्त रत्नों का भंडार है। नवरस रूपी अमृत से भरा हुआ समुद्र है। खुला हुआ परम-धाम है। सब विद्याओं की मूल भूमि है। अशेष शास्त्रों का आशय है। सब धर्मों की मातृभूमि है, सज्जन का प्रेमास्पद मित्र है। सरस्वती के लावण्य-रत्नों का भंडार है।...यह गीता ज्ञानामृत से भरी हुई गंगा जी हैं, विवेकरूपी क्षीर सागर की नव-लक्ष्मी है।

—सन्त ज्ञानेश्वर

"जिन्हें धर्म को आचरण में लाने की इच्छा है, वे गीता को पढ़ें, विचारें और इसमें से शक्ति प्राप्त करें। भगवद्गीता तो अमूल्य ग्रन्थ है और अब तो तत्त्वज्ञान के लिए मैं उसे सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ। निराशा के समय इस ग्रन्थ ने मेरी अमूल्य सहायता की है। मेरे लिए तो गीता आचार्य की एक प्रौढ़ मार्गदर्शिका बन गई है। वह मेरी धार्मिक कोष हो गई है। अंग्रेजी शब्द के अर्थ को देखने के लिए जिस तरह मैं अंग्रेजी कोष को खोलता हूँ उसी तरह आचार सम्बन्धी कठिनाइयों और उसकी अटपटी गुत्थियों को गीता जी के द्वारा सुलझाता हूं। लौह चुम्बक के समान चित्ताकर्षक वाणी में गीता मेरी बुद्धि को स्पर्श करके और इससे भी आगे मेरे हृदय को पूर्णतया स्पर्श करके मेरे मन में यह आस्था उत्पन्न करती है कि भूत मात्र एक रूप है, वे सभी ईश्वर में से निकले हैं, और उसी में विलीन हो जाने वाले हैं।

—महात्मा गांधी

भारतवर्ष के इस सर्वप्रिय काव्य दार्शनिक ग्रन्थ गीता के बिना अंग्रेजी साहित्य निश्चय ही अपूर्ण रहेगा।

—सर एडविन आर्नल्ड

'भगवद्गीता जीवन के सर्वोच्च लक्ष्यों को हृदयङ्गम करने में महत्वपूर्ण सहायता देता है।

—भू० पू० राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्

'मेरा विश्वास है कि मनुष्य जाति के इतिहास में भगवान श्री कृष्ण की कही हुई भगवद्गीता के समान ज्ञानपूर्ण कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है।'

—महामना मदनमोहन मालवीय

'गीता के उपदेशों ने जीवन-पथ पर चलते-चलते असंख्य निराश और श्रान्त पथिकों

को ठीक उसी प्रकार शान्ति आशा और आश्वासन दिया है, जिस प्रकार अर्जुन को।

—श्री के० ब्राउनी महोदय

गीता को धर्म का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानने का यही कारण है कि उसमें ज्ञान, कर्म और भक्ति—तीनों योगों की न्याययुक्त व्याख्या है, अन्य किसी भी ग्रन्थ से इसका सामञ्जस्य नहीं है।

ऐसा अपूर्व धर्म, ऐसा अपूर्व ऐक्य, केवल गीता में ही दृष्टिगोचर होता है। ऐसी अद्भुत धर्म-व्याख्या किसी भी देश में और किसी भी काल में किसी ने भी की हो, ऐसा जान नहीं पड़ता।

—बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

'श्रीमद्भगवद्गीता संसार के उदात्त तथा गम्भीर धर्मशास्त्रों में मुकुटमणि है।'

—चार्ल्स जान्सटन महोदय

भगवद्गीता में जिस मोक्ष मार्ग का इतने स्पष्ट में निर्देश किया गया है, वह केवल हिन्दू धर्म की ही नहीं, सबकी सार्वभौम विशिष्ट सम्पत्ति है।

डा० मुहम्मद हाफिज सैय्यद, डी०लिट्०

भगवान कृष्ण के कण्ठ से निकली हुई यह गीता आदिकाल से सनातन प्रश्नों का मानव मात्र के लिए एक सनातन सर्वकालीन उत्तर प्रस्तुत करती रही है।

पंजाब-केसरी, स्वर्गीय लाला लाजपतराय

भगवद्गीता में सभी धर्मों के मूल तत्वों का बहुत ही सुन्दर एवं हृदयग्राही विवेचन हुआ है।

—प्रोफेसर फीरोज कावस जी

किसी भी जाति के उन्नति के शिखर पर चढ़ने के लिए गीता का उपदेश अद्वितीय है।

—गवर्नर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्ज

धर्मात्मा पुरुष की संसार अभिलाषा करता है, क्योंकि धर्मात्मा संसार की अभिलाषा नहीं करता। अभिलाषा वही करता है, जो अपने धर्म का पालन नहीं करता। सारा संसार धर्मात्मा के दर्शन की प्रतीक्षा में है, यदि आप संसार को अपनी ओर बुलाना चाहते हैं, तो धर्म का पालन करें।

सन्त-वाणी

- अधिकार जताने से अधिकार सिद्ध नहीं हो जाता ।
- कलाकार प्रकृति का प्रेमी है, इसलिए वह उसका दास भी है और स्वामी भी ।
- प्रेम के भीतर एक ऐसा अद्भुत रहस्य है, जहाँ एक ओर यदि कुछ भी न जाने तो वहाँ दूसरी ओर से सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।
- कर्म वह आईना है जो हमारा स्वरूप हमें दिखा देता है । अतएव हमें कर्म का अहसान-मन्द होना चाहिये ।
- डूबने वाले के साथ सहानुभूति का यह अर्थ नहीं कि उसके साथ डूब जाओ बल्कि तैर कर उसे बचाने का प्रयत्न करो ।
- जो उपकार करने वाले को नीच मानता है, उससे अधिक नीच दूसरा कोई नहीं है ।
- शिष्य के ज्ञान पर 'सही' करना, यही गुरु का काम है बाकी के लिए शिष्य स्वावलम्बी है ।
- अर्जुन पूछता है, "इच्छा न होते हुए भी मनुष्य पाप किस लिए करता है ?" भगवान कहते हैं, "इच्छा है इसलिए करता है ।"
- धर्मात्मा पुरुष की संसार अभिलाषा करता है, क्योंकि धर्मात्मा संसार की अभिलाषा नहीं करता । अभिलाषा वही करता है, जो अपने धर्म का पालन नहीं करता । सारा संसार धर्मात्मा के दर्शन की प्रतीक्षा में है, यदि आप संसार को अपनी ओर बुलाना चाहते हैं, तो धर्म का पालन करें ।
- विषयासक्त होने पर जीवन की जो अवस्था होती है, वही पशु जीवन है, क्योंकि स्वतन्त्रता लेशमात्र नहीं रहती । पराधीनता जीवन का स्वरूप हो जाती है ।
- विषयी विषयों की पूजा करता है इसलिए हीन होता है । प्रेमी प्रेम-पात्र की पूजा करता है इसलिए पूर्ण होता है । क्योंकि प्रेम-पात्र स्वतन्त्र और विषयी परतन्त्र है । परतन्त्र का पुजारी परतन्त्रता और स्वतन्त्र का पुजारी स्वतन्त्रता पाता है ।

'कर्म और अकर्म'

(आचार्य श्री मधुसूदन सरस्वती)

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्
—गीता ४-१६

कर्म क्या है और अकर्म क्या है ? इस विषय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हैं, इसलिए मैं वह कर्म अर्थात् कर्मों का तत्व तेरे लिए अच्छी प्रकार से कहूँगा. कि जिसको जानकर तू अशुभ अर्थात संसार बन्धन से छूट जायगा।

परमार्थ कर्म क्या है, क्या अकर्म है इस विचार में बड़े-बड़े विद्वान भी विमुग्ध देख भगवान् ने स्वयं कहा, कि कर्म और अकर्म का भेद हम कहेंगे, वह भी 'वक्ष्यामि' साधारण न कह 'प्र' उपसर्ग विशेष लगाकर कहा, जिसका तात्पर्य संशय निवर्तक कथन में है, जिस कर्माकर्म के स्वरूप को जानकर संशय रहित हो संसार से मुक्त हो जावोगे।

कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्य गहना कर्मणो गतिः॥
—गीता ४-१७

कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का तथा निषिद्ध कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये। क्योंकि कर्म की गति गहन है।

भगवान ने कहा कि शास्त्र विहित कर्म का तत्व हमें समझना चाहिए ! प्रतिषिद्ध कर्म विकर्म है, तूष्णीभाव कुछ न करना अकर्म है। इनके तत्त्व को जानना चाहिए। इन तीनों वाक्यों में बोद्धव्य का अध्याहार है। कर्म, अकर्म, विकर्म इन तीनों की गति यथार्थस्वरूप गहन है। अति कठिन कर्म उपलक्षण है, उक्त तीनों का तत्त्व दुर्ज्ञेय है।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥
—गीता ४-१८

जो पुरुष कर्म में अर्थात अहंकार रहित की हुई सम्पूर्ण चेष्टाओं में अकर्म अर्थात् वास्तव में उनका न होना देखे, और जो पुरुष अकर्म में अर्थात् अज्ञानी पुरुष द्वारा किये हुए सम्पूर्ण क्रियाओं के त्याग में भी कर्म को अर्थात् त्यागरूप क्रिया को देखे वह पुरुष मनुष्यों में बुद्धिमान है वह योगी सम्पूर्ण कर्मों का करने वाला है।

कर्मणि का तत्त्व कैसा है ? इसको यहां बतलाते हैं। कर्मणि-इत्यादि से। देहेन्द्रियादि व्यापार विहित हो या प्रतिषिद्ध, उस में मैं करता हूं यह धर्माध्यास आत्मा में आरोपित है, देहेन्द्रियादि का आत्मा में तादात्म्याध्यास है इसी से मैं गोरा बहिरा इत्यादि प्रतीतियां होती हैं। तादात्म्याध्यास होने पर तद्धर्म कर्तृत्वादि का आरोप होता है, जैसे लोहे में अग्नि का तादात्म्याध्यास होने पर तद्धर्म इत्यादि का आरोप कर लोहा जलता है' यह प्रयोग होता है, वैसे ही मैं करता हूं यह भी प्रतीति आरोपित कर्तृत्व विष-

यक है। नौकास्थ पुरुष निश्चल तटस्थ वृक्षों में चलना आरोप के समान उन कर्ता आत्मस्वरूप का निश्चल करने से वस्तुतः क्रियारहित तीरस्थ वृक्षों के समान कर्माभाव देखता है। तथा माया परिणाम, अतएव सदा तद्व्यापार देहेन्द्रियादि में व्यापाराभाव यानी चुप बैठे हैं, कुछ नहीं करते हैं, इस अभिमान से आरोपित अकर्म में जोर व्यापाराभाव दशा में एवं दूरस्थ चक्षुःसन्निकृष्ट चलने पुरुष में गमनाभाव के समान हर समय में व्यापार सहित देहेन्द्रियादि स्वरूप का अवधान कर वस्तुतः कर्माभाव रूप प्रयत्न देखें, और जैसे दूरस्थ पुरुष में चलन है पर दूरस्थ दोष से तद्भाव दीख पड़ता है वैसे ही कर्माभाव सदा कर्मशील देहादि में देखें।

उदासीन मैं हूं, यह अभिमान ही कर्म है। एतादृश परमार्थदर्शी पुरुष सब मनुष्यों में बुद्धिमान एवं योगयुक्त है वही समस्त शुभ कर्म करता है।

❀ ❀ ❀ ❀

पहले मन को निर्मल करो

—महात्मा आनन्द स्वामी

एक महात्मा थे। किसी घर में भिक्षा मांगने गये। घर की देवी ने भिक्षा दी और हाथ जोड़कर बोली—'महात्मा जी, कोई उपदेश दीजिए !'

महात्मा ने कहा-'आज नहीं कल उपदेश दूंगा।'

देवी ने कहा-'तो कल भी यहीं से भिक्षा लीजिये !'

दूसरे दिन जब महात्मा भिक्षा लेने के लिए चलने लगे तो अपने कमण्डल में कुछ गोबर भर लिया, कुछ कूड़ा, कुछ कंकर। कमण्डल को लेकर देवी के घर पहुंचे। देवी ने उस दिन बहुत अच्छी खीर बनाई थी उनके लिए। उसमें बादाम और पिस्ते डाले थे। महात्मा आवाज दी—'ओ३म् तत् सत् !'

देवी खीर का कटोरा लेकर बाहर आई। महात्मा ने अपना कमण्डल आगे कर दिया। देवी उसमें खीर डालने लगी तो देखा कि वहां गोबर और कूड़ा भरा पड़ा है। रुककर बोली—महाराज, यह कमण्डल तो गन्दा है।'

महात्मा ने कहा—'हां, गन्दा तो है। इसमें गोबर है, कूड़ा है, परन्तु अब करना क्या है ! खीर भी इसी में डाल दो।'

देवी ने कहा—'नहीं महाराज ! इसमें डालने से तो खराब हो जायेगी। मुझे दीजिये यह कमंडल, मैं इसे शुद्ध कर लाती हूं।'

महाराज बोले—'अच्छा माँ, तब डालेगी खीर, जब कूड़ा-कंकर साफ हो जाये ?'

देवी बोली—हां।'

महात्मा बोले—'यही मेरा उपदेश है। मन में जब तक चिन्ताओं का कूड़ा-करकट और बुरे संस्कारों का गोबर भरा है, तब तक उपदेश के अमृत का लाभ नहीं होगा। उपदेश का अमृत प्राप्त करना है तो इससे पूर्व मन को शुद्ध करना चाहिये, चिन्ताओं को दूर कर देना चाहिये। तभी ईश्वर का नाम वहां चमक सकता है और तभी सुख और आनन्दकी ज्योति जाग उठती है।'

साधक के कर्तव्य

(श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज)

साधना जीवन का प्रमुख अङ्ग है। साधना के लिए ही हमें यह अमूल्य मानब-जन्म मिला है। साधक का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि इस शरीर से जो भी कार्य करे, वह ऐसा हो जिससे वह मानव कहलाने का अधिकारी बने। अतः साधक के सभी प्रयत्न ईश्वर-प्राप्ति के लिए ही किये जाने चाहिये। उसे सदा इस बात पर विचार करते रहना चाहिए कि वह पशु से श्रेष्ठ है।

मनुष्य में और पशु में यही अन्तर है कि मानव में विचार और विवेक है, अच्छा-बुरा जानने की, तर्क करने की शक्ति है अर्थात् बुद्धि है। पशु में विवेक का सर्वथा अभाव है। यूं तो सभी मनुष्यों के लिए विचारवान् होने की आवश्यकता है; क्योंकि विवेकहीन व्यक्ति तो सदा ठोकरें खाता रहेगा, भटकता रहेगा; किन्तु साधक के लिए तो विचारशील, विवेकशील होना अनिवार्य ही है।

साधक का कर्तव्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। वह इस शरीर को सब प्रकार से ईश्वर प्राप्ति के लिए लगाये—इतना ही पर्याप्त नहीं हैं वरन् उसे तो इस शरीर, मन और बुद्धि से भी परे जाना है। जब तक इन सबसे हमारा तादात्म्य रहेगा, हम ऊपर नहीं उठ सकेंगे। 'मैं यह शरीर नहीं हूँ' ऐसा भाव सदा बनाये रखना चाहिए। स्वयं को नित्य, शुद्ध, अमर आत्मा मानना चाहिए। मानव-जीवन का साफल्य तो तभी है जब वह स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़े, उसका प्रत्येक कार्य आध्यात्मिक हो, प्रत्येक विचार में आध्यात्मिकता हो और साथ ही वाणी से आध्यात्मिक अनुभूति प्रकट होती हो।

जीवन को सदा गतिशील बनाना साधक का एक अन्य कर्त्तव्य है। गतिशीलता ही जीवन है और गतिरोध ही मृत्यु है। सदा सत्प्रयत्न करते रहना ही जीवन, जीने का लक्षण है। मनुष्यता से दिव्यता की ओर अविराम गति से अग्रसर होना ही साधक की सच्ची साधना है। यही जीवन का लक्ष्य है। साधक को सदा दैवी गुणों को प्रकाशित करना चाहिये।

आसुरी प्रवृत्तियां बड़ी प्रबल होती हैं। वह मानव को अपना दास बनाये रखती है। क्रोध, लोभ, ईर्ष्या तथा अहंकार जैसे दुर्गुण जाल की तरह फैले रहते हैं। तनिक

सी असावधानी जीवन भर की साधना पर, तपस्या पर पानी फेर सकती है। अतः साधक को सदा सजग रह कर दैवी गुणों सेवा, प्रेम, दान, पवित्रता, धारणा तथा ध्यान—का विकास करके आसुरी प्रवृत्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिए। उन्हें (आसुरी प्रवृत्तियों को), सदा हेय दृष्टि से देखना चाहिये तथा उनका तिरस्कार करते रहना चाहिए।

साधक कभी-कभी दोषों में गुण खोज लेता है, इसीलिए उन्हें छोड़ना कठिन हो जाता है। जब तक दोष में एक भी गुण दिखाई देगा, वह छूटेगा नहीं। अतः दुर्गुणों से कभी भी समझौता नहीं करना चाहिए।

दिव्यता की प्राप्ति, भगवत्प्राप्ति के लिए किये गये निरन्तर अथक प्रयत्न ही सच्ची साधना है—यह निष्कर्ष निकलता है। जो साधक इस प्रकार से चेष्टा कर रहा है, तन-मन-धन से पुरुषार्थ कर रहा है, वही अपने लक्ष्य तक पहुँचेगा। निष्क्रियता का जीवन में कोई स्थान नहीं है। निष्क्रय रह कर व्यक्ति अपने जीवन की सभी प्रकार की प्रगति को अवरुद्ध कर देता है।

आत्म-निरीक्षण तथा आत्म-परीक्षण द्वारा साधक को अपने कार्यों में सुधार लाना होगा। 'कल मैं कहां था ? आज मैं कितना बढ़ सका हूँ ? मेरी दिशा क्या है ?' आदि बातों पर नित्य विचार करना होगा। प्रगति के लिए उत्सुकता तथा व्याकुलता बनाये रखनी होगी। जब तक ईश्वर प्राप्ति के भाव में तीव्रता नहीं होगी, उनके दर्शन के लिए नेत्रों से अश्रु नहीं बहेंगे, वाणी गद्गद् नहीं होगी और कण्ठ अवरुद्ध नहीं होगा तब तक प्रभु तुम्हें अपनायेंगे नहीं।

अतः अपने लक्ष्य की ओर अविराम गति से दृढ़ता पूर्वक निर्भय होकर बढ़ते चलो। मञ्जिल तुम्हें स्वयं पुकार लेगी।

कीर्तन-ध्वनियाँ

कृष्ण

सुन्दरं देवकी-नन्दनं मोहनम् ।
मन्दरोद्धारणं बालकृष्णं भजे ॥
रेवती-देवरं वासुदेवं विभुम् ।
माधवं वामनं पद्मनाभं शुभम् ॥

केशवं सास्वतं कैटभ-भञ्जनम् ।
विश्वरूपं मुरमर्दनं सारंगिणम् ॥
चक्रपाणि विधुं गोपिका वेष्ठितम् ।
विक्रमं कृष्णविश्वंभरं श्रीपतिम् ॥

शिव

शंकर शेखरं चन्द्रचूडं हरम् ।
ईश्वरं वामदेवं भजे शूलिनम् ॥
व्योमकेशं गिरीशं क्रतुध्वंशिनम् ।
धूर्जटि त्र्यम्बकं नीलकंठ शिवम् ॥

चण्डिका वल्लभं दण्डधारान्तकम् ।
पुण्रीकार्चनं कृत्तिवासं भवम् ॥
चक्रदं तुष्टितं भविभावं विभुम् ।
दीन दुःखहरणं दातं 'शिव' निज पदम् ॥

गीता—ईश्वरों के ईश्वर का गीत

(श्रीयुत् जार्ज सिडनी अरुंडेल, प्रधान थियासाफिकल सोसाइटी)

जो संसार की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है उसके सम्बन्ध में भला मैं क्या लिखूं ? यों तो गीता के अतिरिक्त और भी कई महान धर्म ग्रन्थ हैं, परन्तु भगवद्गीता की तो बात ही निराली है। वह तो ईश्वरों के भी ईश्वर परम महेश्वर का दिव्य संगीत है। कोई मनुष्य किसी भी धर्म का मानने वाला हो, उसे इस ग्रन्थ से प्रगाढ़ ईश्वरीय भाव मिले बिना नहीं रह सकता। यह एक ऐसा ग्रन्थ है जिसे कुछ लोग हिन्दुओं की संपत्ति कह सकते हैं। परन्तु उदार मनोवृत्ति के लोग इसे समस्त धर्मों के बाह्य स्वरूप से परे समझते हैं।

भगवद्गीता परमेश्वर की वाणी है। वे इसमें जीवात्मा एवं परमात्मा की पूर्ण एकता की बात कहते हैं, और उस सनातन कर्ममार्ग का उपदेश देते हैं जो मोह निशा में सोने वाले वाले अज्ञानी जीव और पूर्णता को प्राप्त हुए ज्ञानी महात्माओं की बीच में होकर जाने वाला दिव्य मार्ग है।

देववाणी संस्कृत में लिखे जाने से ग्रन्थ का और भी मूल्य बढ़ गया है। क्योंकि उसका उपदेश तो सर्वाङ्ग सुन्दर है, साथ ही वह सर्वाङ्ग सुन्दर भाषा में भी ग्रथित हुआ है। गीता का एक अक्षर, एक वाक्य, एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिसमें संगीत न हो। भगवद्गीता का पाठ अथवा ऊंचे स्वर से गाना भी एक योग ही है,—खासकर जब उसे ऐसे लोग पढ़ते हैं जो पाठ करके की शैली से परिचित हैं।

इस प्रकार गीता को चाहे बहिरङ्ग दृष्टि से देखें या अन्तरङ्ग दृष्टि से देखें, ईश्वरीय प्रकाश को साक्षात्‌रूप से हमारे सामने प्रतिबिम्बित करती है। उस वाणी के प्रति जो थोड़े से शब्दों में हमारे ईश्वरत्व की अपरिमेय विभूति को प्रकट करती है, अपना श्रद्धायुक्त सम्मान का भाव व्यक्त करने के लिए इससे अधिक हम क्या कह सकते हैं।

卐

गीता की शिक्षा

(महात्मा गांधी)

मैं चाहता हूँ कि गीता न केवल राष्ट्रीय शालाओं में ही बल्कि प्रत्येक शिक्षा संस्थाओं में पढ़ायी जाय। एक हिन्दू बालक बालिका के लिए गीता का न जानना शर्म की बात होनी चाहिए। यह सच है कि गीता विश्वधर्म की एक पुस्तक है। बाहरी दबाव से गीता कभी विश्वव्यापिनी नहीं होगी। वह विश्वव्यापिनी तो तभी होगी जब उसके प्रशंसक जबर्दस्ती दूसरों के गले न उतारकर स्वयं अपने जीवन द्वारा उसको मूर्त रूप देंगे।

गीता में श्रद्धा—जो वस्तु बुद्धि से भी अधिक है,। परे है—वह श्रद्धा है बुद्धि का उत्पत्ति स्थान मस्तिष्क है, श्रद्धा का हृदय। और यह तो जगत का अविच्छिन्न अनुभव है बुद्धि बल से हृदय बल सहस्रशः अधिक है। श्रद्धा से जहाज चल रहे हैं श्रद्धा से पुरुष पुरुषार्थ करता है, और श्रद्धा से वह पहाड़ों-अचलों को चला सकता है। श्रद्धावान् को कोई परास्त नहीं कर सकता। बुद्धिमान को हमेशा पराजय का डर रहता है। इसलिए भगवान ने गीता के सत्रहवें अध्याय में कहा है—'यो यछ्रच्द्धः स एव सः' जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बनता है। मनुष्य यह श्रद्धा कैसे प्राप्त करे? इसका उत्तर गीता और रामचरित-मानस में है। भक्ति से या सतसंग से श्रद्धा प्राप्त होती है।

गीता में अनासक्ति—अपने और पराये में भेदभाव न रखने की बात तो गीता के पन्ने-पन्ने में है। पर यह कैसे हो सकता है? यों सोचते-सोचते हम इस निश्चय पर पहुंचेंगे कि अनासक्ति पूर्वक सब काम करना ही गीता की प्रधान ध्वनि है।

गीता से सब समस्याओं का हल—'.........जब-जब संकट पड़ते हैं तब-तब संकट टालने के लिए हम गीता के पास दौड़े जाते हैं और उससे आश्वासन पाते हैं। हमें गीता को सब दृष्टि से पढ़ना है। वह हमारे लिए सद्गुरू रूप है, माता रूप है और हमें विश्वास रखना चाहिये कि उसकी गोद में सिर रखने से हम सही सलामत रहेंगे। गीता के द्वारा हम अपनी तमाम धार्मिक उलझनें सुलझावेंगे। इस विधि से जो गीता का अध्ययन मनन करेगा। उसे उसमें से नित्य नया आनन्द मिलेगा—नये अर्थ प्राप्त होते रहेंगे। ऐसी एक भी धार्मिक समस्या नहीं जिसे गीता हल न कर सके।

❁❁ ❁❁

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो

(परमयोगी श्री विवेकानन्द जी)

श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश प्रारम्भिक साधक के लिए नहीं हो सकता। वह तो एकान्त में बैठकर भी विषय-चिन्तन ही करेगा न कि आत्मचिन्तन। जो एकान्त उत्तम साधकों के लिए मोक्ष का हेतु, वही दूसरे पुरुषों के लिए पतन का हेतु है। इस कारण साधक को चाहिए कि पहले सत्संग का सहारा लेवे। जहां पर पामर पुरुष सदैव विषयों की ही चर्चा करते रहते हैं वहां कभी न जावे। न उनकी बातों को कानों के मार्ग से अपने भीतर घुसने दे। जहां प्रभु की चर्चारूप गंगा की धारा बहती है, महापुरुषों का जीवन उनकी शिक्षा और उनके शिक्षाप्रद कार्यकलापों का वर्णन किया जाता है। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि आर्थिक हानि सहकर तथा अपनी थाली में परसा भोजन तक छोड़कर इस ज्ञानगङ्गा मेंडुबकी लगाने केलिए अवश्य ही जावे और अपने मन के सम्पुर्ण पाप और ताप धो डाले। मैं दृढ़ता से इस बात को कहता हूँ कि मनुष्य के वहां तक पहुँचने भर की देर है। फिर आगे की बात क्या कहूं लेखनी लिखने में असमर्थ है। जो कुछ हो जाता है वाणी उसे कहने में समर्थ नहीं। वहां के परमाणुओं में ही कुछ दिव्यता का नशा होता है कि बाहर भीतर मस्ती आजाती है। इस दूसरी दुनियां में पहुँचकर उससे पहली दुनियां छूट ही जाती है। धीरे-धीरे उसकी वहिर्मुखवृत्ति अन्तर्मुख होकर जागृत हो जाती है।

सत्संग से विषयों में स्वयमेव दोषदृष्टि उत्पन्न हो जाती है। विवेकवृत्ति जागृत हो जाती है। छूट जाता है प..ला संसार दूसरे को पकड़ना चाहता है क्योंकि इस मनीराम को कुछ न कुछ चाहिए बिना किसी आलम्बनके इसे जीना मुश्किल दिखाई देता है। तभी 'सुविचारणा' नाम की प्रथम भूमिका ऐसे पुरुषों के लिए ही भगवान का वह गीतोक्त उपदेश है जो ऊपर उद्धृत किया गया है। इस उपदेश का यथावत् अनुष्ठान करके परमानन्द लाभ करता है। उस अवस्था में पहुँचकर मनमें उठने वाली असंख्य कामनायें वैसे ही विलीन हो जाती हैं जैसे जल में तरंगें। भगवान के भाव इसी को सिद्ध करते हैं:—

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत।
तद्वतकामाऽयं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न काम कामी॥

अचल प्रतिष्ठावाले जलसे परिपूर्ण समुद्र में प्रवेश जिस प्रकार नदियां विलीन हो जाती हैं उसीप्रकार जिस मन में सम्पूर्ण कामनायें बिना उथल-पुथल किये समा जाती हैं, वह मन ही मोक्षरूप परम-शान्ति को प्राप्त करता है। कामनाओं की पूर्ति चाहने वाला नहीं।

एषा ब्राह्मीस्थितिःपार्थ नैनांप्राप्य विमुह्यति
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाण मृच्छति

हे कुन्तीपुत्र! यह ब्रह्मको प्राप्त हुये पुरुषकी स्थिति है। इसको प्राप्त कर लेने के बाद मोह को प्राप्त नहीं होता। और शरीर के अन्तसमय में भी इसमें स्थित रहकर ब्रह्मनिर्वाण (अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।

सो संयमी कहलाय है!

(ब्रह्मलीन श्री स्वामी भोलेबाबा जी महाराज)

—●—

जो कार्य करता है नियम से विधि तथा उत्साह से ।
ना संग दुर्जन का करे, चलता न खोटी राह से ॥
रखता न कोई कामना, ना क्रोध मन में लाय है ।
विश्वेश का करता भजन, सो संयमी कहलाय है ॥

इस देह के निर्वाह हित, भोजन करे है सात्विकी ।
ना भूख से खाता अधिक, रक्षा करे है स्वास्थ्य की ॥
शिव हेतु पीता जल तथा, शिव हेतु खाना खाय है ।
शिव हेतु सोता जागता, सो संयमी कहलाय है ॥

करता निरन्तर धारणा, करता निरन्तर ध्यान है ।
शिव मांहि करता बुद्धिलय, शिवमात्र रखता ज्ञान है ॥
कुछ काल के अभ्यास से, शिवरूप ही हो जाय है ।
संयम करे इस भांति का, सो संयमी कहलाय है ॥

ना चित्त जिसका पुत्र में, ना चित जिसका, वित्त में ।
है कृष्ण जिसके चित्त में जो कृष्ण के है चित में ॥
आसक्ति सबकी छोड़कर, जो कृष्ण को ही ध्याय है ।
ना ध्यान करता अन्य का सो संयमी कहलाय है ॥

परमात्म की महिमा सदा जिस धीर में है भासती ।
परिपूर्ण अद्भुत शान्ति जिनके देह मांहि प्रकाशती ॥
शुचि शम्भु जिसके देह में शोभन झलक दिखलाय है ।
शिव-भक्त सच्चा नन्दि-सम सो संयमी कहलाय है ॥

मैं एक केवल ब्रह्म हूँ ऐसा जिसे निश्चय भया ।
आशा सभी हों जल गयीं अभिमान भी हो गल गया ॥
ममता अहंता से रहित स्वच्छन्द आवे जाय है ।
भोला ! हुआ नि-शंक जो सो संयमी कहलाय है ॥

गीता में शान्ति के सात उपाय

अनन्तश्री विभूषित म० मं० श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज सरस्वती

गीता में शान्ति के अनेक उपाय बताये गये हैं, इनमें से सात उपाय विशेष रूप से ७ प्रकार के साधनों से परिलक्षित कर के समझाये गये हैं–

१–ज्ञानयोग, २–ध्यानयोग, ३–निष्कामकर्मयोग, ४–परम आस्तिकयोग, ५–कामनात्याग योग, ६–अनन्य भक्तियोग, ७–पूर्ण शरणागति योग।

ज्ञानयोग

ज्ञानयोग के द्वारा शान्ति की प्राप्ति सब से शीघ्र होती है। ज्ञानयोग का सम्बन्ध विवेक से है और विवेक की प्राप्ति विचार से होती है वस्तु की या पदार्थ की सत्यता और असत्यता पर विचार करना ही विवेक है और जहां विवेक हुआ वहां ज्ञान प्राप्ति में देरी नहीं लगती, इस ज्ञान प्राप्ति के लिये गीता में ३ बहिरंग और ३ अन्तरंग साधन बतलाये गये हैं। बहिरंग साधनों के लिए १–प्रणिपात २-परिप्रश्न, ३-सेवा ये तीन साधन बताये हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

—गीता ४-३४

प्रणिपात का अर्थ है विषादयोग जो अर्जुन को पहले अध्याय में हुआ था। और उसके बाद उसने भगवान से परिप्रश्न किया और सेवा तो पहिले से कर ही रहा था, इसलिए अर्जुन में ये तीनों ही ज्ञान के बहिरंग साधन घटित थे। ज्ञान प्राप्ति के लिए इसके बाद अन्तरंग साधन भी तीन ही गीता में बताये गये हैं, यथा—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं, तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति मचिरेणाधिगच्छति

—गीता ४-३९

अर्थात् साधक श्रद्धावान रहे। उसमें साधन की तत्परता हो, और इन्द्रियां वश में रहें तो ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम् की भी प्राप्ति होगी अर्थात् ज्ञान् की ही नहीं परा शान्ति की भी प्राप्ति होगी। यह ज्ञानमार्ग द्वारा परा शान्ति का उपाय, जिसका आधार विवेक और विचार हैं।

ध्यानयोग

इसके लिये भाइये गीता के छठे अध्याय में देखिये ध्यानयोग की प्रक्रिया।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

—गीता ६, २४-२६-२८

यह राजयोग द्वारा, ध्यानयोग का साधन और उसके द्वारा ब्रह्मसंस्पर्श जन्य आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति। ध्यान दो प्रकार से किया जाता है —

१–राजयोग के द्वारा।
२–हठयोग के द्वारा।

दोनों ही योगों का वर्णन छठे अध्याय में किया गया है उपरोक्त तीनों मन्त्रों में राजयोग का वर्णन है, तथा लिखा है कि संकल्पों से पैदा होने वाली समस्त कामनाओं का त्याग कर के मन और दसों इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा कर धैर्य-युक्त बुद्धि से अपने मन को नाशवान जड़ पदार्थों से हटाकर परमात्मा में लगाने का अभ्यास कर। और यह अभ्यास करता-करता जब मन बिलकुल ही विषयों में न जावे और विगतकल्मष बन जावे उस समय तू बड़ी सरलता से ब्रह्म का संस्पर्श कर लेगा और तभी अत्यन्त सुख की प्राप्ति होगी।

यह ध्यानयोग का राजयोग द्वारा साधन।

राजयोग—सब योगों में अत्यन्त सरल राज मार्ग है, गीता के छठे अध्याय में दोनों ही मार्गों—राजयोग व हठयोग का वर्णन है और दोनों के द्वारा अलग-अलग ध्यान की प्रक्रियायें समझाई गयी हैं। यथा—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥
—गीता ६-११

वासना रहित योगी शुद्ध भूमि में कुशा मृग-छाला और आसन को न अति ऊंचा और न अति नीचा स्थापन करे।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥
—गीता ६-१२

उस आसन पर बैठकर मन को एकाग्र कर चित्त और इन्द्रियों की क्रिया को वश में कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योग का अभ्यास करे।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥
—गीता-६-१३

काया शिर और ग्रीवा को समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ होकर अपने नासिका के अग्रभाग को देख कर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ—

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥
—गीता ६-१४

ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहता हुआ, भय रहित तथा अच्छी प्रकार शान्त अन्तःकरण वाला, और सावधान होकर मन को वश में करके, मेरे में चित्त को लगाकर मेरे परायण हुआ स्थित होवे।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं, योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥
—गीता ६-१५

इस प्रकार आत्मा को निरन्तर, परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ, स्वाधीन मन वाला योगी मेरे में स्थित रूप परमानन्द पराकाष्ठा वाली शान्ति को प्राप्त होता है। अर्थात् पवित्र स्थान में आसन जमाकर स्थिर चित्त होकर एकाग्र मन करके पद्मा-सन या सिद्धासन पर बैठे। शरीर, शिर, या ग्रीवा को एक लाइन में सीधाकर, बैठ करके नासिकाग्र भाग पर ध्यान लगाता हुआ, दिशाओं को न देखता हुआ, ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके ध्यान करे, अभ्यास करते-करते इस प्रकार उसका मन स्थिर हो जाएगा। तथा थोड़े दिन बाद 'शान्ति निर्वाण परमां अधिगच्छति' अर्थात् निर्वाण ही जिसकी

सीधा है, ऐसी परम शांति को प्राप्त कर लेना है। इस प्रकार हठयोग द्वारा निर्वाण परमां शान्ति' की प्राप्ति बतायी गयी है। गीता के इस छठे अध्याय के १५ नम्बर के मन्त्र में हठयोग द्वारा 'मोक्षपरक' परम शान्ति का उपाय बताया गया है।

निष्काम कर्मयोग

फल और आसक्ति को त्याग कर भगवद् आज्ञानुसार केवल भगवदर्थ समत्व बुद्धि से कर्म करने का नाम निष्काम कर्मयोग है। इसी को समत्वयोग, बुद्धियोग, कर्मयोग, तदर्थकर्म, मदर्थकर्म मत्कर्म इत्यादि नामों से कहा है भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

—गीता २-४०

इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है। और उल्टा फल रूप दोष भी नहीं होता है। इसलिए इस निष्काम कर्मयोग रूप धर्म का थोड़ा भी साधन जन्म-मृत्यु रूप महान भय से उद्धार कर देता है।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्

—गीता २-४५

हे अर्जुन ! सब वेद तीनों गुणों के कार्य रूप संसार का विषय करने वाले अर्थात् प्रकाश करने वाले हैं इसलिए तू निष्कामी और सुख दुःखादि द्वन्द्वों से रहित नित्य वस्तु में स्थित तथा योगक्षेम को न चाहने वाला और आत्म परायण हो।

कर्मजबुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥

—गीता २-५१

क्योंकि बुद्धियोग युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्याग कर जन्म रूप बन्धन से छूटे हुए निर्दोष अर्थात् अमृतमय परमपद को प्राप्त होते हैं।

परम आसक्ति योग

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

—गीता ६-५

मनुष्य को चाहिये कि अपने द्वारा अपना उद्धार करे और आत्मा को पतन से बचावे। क्योंकि यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है। और आप ही अपना शत्रु है।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

—गीता ६-६

उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है कि जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है और जिसके द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है उसका वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में वर्तता है। देखिये गीता अध्याय ६ श्लोक ७-८-९-१० तक।

सर्वकामना त्यागयोग

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्य तृप्तो निराश्रयः
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति च

—गीता ४-२०

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥

—गीता १८-११

गृहस्थाश्रम में रहता हुआ भी मनुष्य त्याग के द्वारा परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। परमात्मा

को प्राप्त करने के लिए त्याग ही मुख्य साधन है। अतएव ५ श्रेणियों में विभक्त करके त्याग के लक्षण कहे हैं।

१—निषिद्ध कर्मों का सर्वथा त्याग।

२—काम्य कर्मों का त्याग।

३—तृष्णा का सर्वथा त्याग।

४—स्वार्थ के लिए दूसरों से सेवा कराने का त्याग।

५—सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों में आलस्य और फल की इच्छा का सर्वथा त्याग।

अनन्य भक्तियोग

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

—गीता १२-१३

इस प्रकार शान्ति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थ रहित सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित सुख दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पित मनो बुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः॥

—गीता १२-१४

तथा जो ध्यान योग में युक्त हुआ निरन्तर लाभ हानि में सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है वह मेरे में अर्पण किये हुए मन बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्यारा है गीता-अध्याय १२ श्लोक १५ से २० तक देखिये।

पूर्ण शरणागतियोग

इसलिये कायरता रूप दोष करके उपहृत हुये स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ मैं आपको पूछता हूँ जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याण कारक साधन हो वह मेरे लिये कहिये। क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ इसलिये आपके शरण हुये मेरे को शिक्षा दीजिए।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वांप्रपन्नम्॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधुसमागम॥

साधुओं का दर्शन पावन है, क्योंकि वे तीर्थस्वरूप होते हैं, तीर्थ का फल तो देर से मिलता है परन्तु साधुसमागम का फल तत्काल प्राप्त होता है।

—चाणक्य

❋ गीता धर्म निधि है ❋

(स्वर्गीय महामना मदनमोहन मालवीय)

मेरा विश्वास है कि मनुष्य जाति के इतिहास में सबसे उत्कृष्ट ज्ञान और अलौकिक ज्ञान-शक्ति-सम्पन्न पुरुष भगवान कृष्ण हुए हैं। मेरा दूसरा विश्वास यह है कि पृथ्वीमंडल की प्रचलित भाषाओं में उन भगवान कृष्ण की कही हुई भगवद्गीता के समान छोटे बपु में इतना विपुल ज्ञानपूर्ण कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है।

वेद और उपनिषदों का सार, इस लोक और परलोक दोनों में मङ्गलमय मार्ग का दिखाने वाला, कर्म, ज्ञान और भक्ति—तीनों मार्गों द्वारा मनुष्य को परमश्रेय के साधन का उपदेश करने वाला, सबसे ऊंचा-ज्ञान, सबसे विमल भक्ति, सबसे उज्ज्वल कर्म, यम, नियम, त्रिविध तप, अहिंसा, सत्य और दया के उपदेश के साथ-साथ धर्म के लिए धर्म का अवलम्बन कर अधर्म का त्यागकर युद्ध करने का उपदेश करने वाला यह अद्भुत ग्रन्थ है। जिसके १८ अध्यायों में इतना सत्य, इतना ज्ञान, इतने ऊंचे गम्भीर सात्त्विक उपदेश भरे हैं जो मनुष्यमात्र को नीची से नीची दशा से उठाकर देवताओं के स्थान पर बैठा देने की शक्ति रखते हैं। मेरे ज्ञान से पृथ्वीमण्डल में ऐसा कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है जैसा भगवद्-गीता है। गीता धर्म की निधि है। केवल हिन्दुओं की नहीं, किन्तु सारे जगत के मनुष्यों की निधि है। जगत के अनेकों देशों के विद्वानों ने इसको पढ़कर लोक की उत्पत्ति, पालन, स्थिति और संहार करने वाले परम पुरुष का शुद्ध सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और उनके चरणों की निर्मल-निष्काम परमा भक्ति प्राप्त की है। वे पुरुष और स्त्री बड़े भाग्यवान् हैं जिनको इस संसार के घने अन्धकार से भरे घने मार्गों में प्रकाश दिखाने वाला यह छोटा किन्तु अक्षय-स्नेह से पूर्ण धर्म-प्रदीप प्राप्त हुआ है। जिनको यह धर्म-प्रदीप प्राप्त है, उनका यह भी धर्म है कि वे मनुष्यमात्र को इस परम पवित्र ग्रन्थ का लाभ पहुंचाने का प्रयत्न करें।

मेरी यह अभिलाषा और जगदाधार से यह प्रार्थना है कि मैं अपने जीवन में यह समाचार सुन लूं कि बड़े से लेकर छोटे-से-छोटे तक प्रत्येक हिन्दू सन्तान के घर में एक भगवद्गीता की एक पोथी भगवान की मूर्ति के समान भक्ति और भावना के साथ रक्खी जाती है। और मैं यह भी सुनूं कि और-और धर्मों के मानने वाले इस देश के तथा पृथ्वी-मण्डल के और सब देशों के निवासियों में भी भगवद्गीता के प्रचार का, उस कार्य के महत्व के उपयुक्त विचारित और भक्ति-ज्ञान और धन से सुसमर्थित, प्रबन्ध हो गया है।

लघुकथा—

सर्व भूत हिते रताः

कहते हैं—'हजरत मूसा' एक दिन खुदा के ध्यान में बैठे हुए थे कि उनके सामने एक कुत्ता लड़खड़ाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब हजरत मूसा ने नेत्र खोलकर देखा कि एक कुत्ता जिसकी गर्दन में कीड़े पड़े हुए हैं और खून बह रहा है, पृथ्वी पर बेहोश पड़ा है।

सर्दी के दिन थे, हजरत मूसा ने पहले तो उसके शरीर को पोंछा फिर अपनी गर्म कम्बल उस पर डालकर उसे अपनी कुटिया में ले आये! कुछ गर्म दूध पिलाया और अपने हाथों से उसकी गर्दन के समस्त कीड़े निकालकर उसक उचित चिकित्सा शुरू कर दी।

दो चार दिन में ही वह कुत्ता निरोग हो गया और जिधर उसके जी में आया उधर चला गया। फिर जब हजरत मूसा खुदा के ध्यान में बैठे तो आवाज आई, ऐ मूसा! मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूँ, वह मैं ही था जिसे तू ने राजी कर दिया।

दूसरे दिन हजरत मूसा को स्वप्न में एक फरिस्ता दिखाई दिया जिसने अपनी दोनों बगलों में एक-एक पुस्तक दबा रखी थी। उन्होंने एक पुस्तक की ओर संकेत करते हुए कहा—'ऐ फरिस्ता! इस पुस्तक में क्या लिखा है?' फरिस्ता बोला—'इसमें उन महापुरुषों के नाम लिखे हुए हैं जो खुदा की इबादत (भक्ति) करते हैं, जो एक खुदा के सिवा और किसी को भी प्यारा नहीं समझते।'

हजरत मूसा ने पूछा—'क्या इसमें मेरा नाम भी लिखा है?' फरिस्ते ने पुस्तक खोलकर सबके नामों को पढ़ना शुरू किया सारी पुस्तक पढ़ दी परन्तु उनका नाम कहीं न आया। हजरत मूसा बहुत उदास होकर बोले—'भाई! इस दूसरी पुस्तक में क्या लिखा है?' उसने कहा—'इसमें उन भाग्यवान महापुरुषों के नाम लिखे हुए हैं, जिनकी इबादत स्वयं खुदा करता है जो खुदा को अपने से भी अधिक प्यारे हैं, खुदा जिनके इशारों पर नाचता है।'

हजरत मूसा बोले—'भाई! क्या इसमें मेरा नाम है?' फरिस्ते ने पुस्तक खोलकर देखा तो सर्व प्रथम मोटे अक्षरों में हजरत मूसा का नाम ही उसमें लिखा हुआ था। यह देखकर हजरत मूसा अपने नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए खुदा का बारम्बार धन्यवाद करने लगे और उनकी नींद खुल गई।

कहते हैं—एक दिन भगवान को ध्यान मग्न देखकर श्री लक्ष्मी जी इन से बोली, भगवन्! सम्पूर्ण विश्व तो आपका ध्यान करता है परन्तु आप किसका ध्यान कर रहे हैं।

भगवान बोले—लक्ष्मी! मैं उनका ध्यान करता हूँ जो मेरे दुःखी जीवों का ध्यान रखते हैं, जो मुझको सब भूत प्राणियों में देखकर उनके दुःख दूर करने में लगे हुए हैं, मैं हर समय उनके नाम की माला फेरा करता हूँ।

खुदा के बन्दे तो हैं हजारों, बनों में फिरते जो मारे – मारे।
मैं उसका बन्दा बनूंगा जिसको, खुदा के बन्दों से प्यार होगा॥

श्री गीता-माहात्म्य

गीता शास्त्रमिदं पुण्यं, य पठेत्प्रयतः पुमान् । विष्णोः पदमवाप्नोति, भयशोकादिवर्जितः ॥
गीताध्ययनशीलस्य, प्राणायामपरस्य च । नैव सन्ति हि पापानि, पूर्वजन्मकृतानि च ॥

जो मनुष्य प्रयत्न पूर्वक इस पुण्यमय गीता शास्त्र को पढ़ते हैं, वे भय, शोक से रहित भगवान विष्णु के पद (स्थान) को प्राप्त होते हैं । गीता के पढ़ने में रुचि रखने वाला और प्राणों को रोक कर भगवान का चिन्तन करने वाला, ऐसे प्राणी को जन्मतारों के सञ्चित पाप प्राप्त नहीं होते ॥ १–२ ॥

मलनिर्मोचनं पुंसां, जलस्नानं दिने-दिने । सकृद्गीताम्भसिस्नानं संसारमलनाशनम् ॥
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः । या स्वयं पद्मनाभस्य, मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

जिस प्रकार शरीर का मल जल में स्नान करने से दूर होता है, उसी प्रकार एक बार ही गीता रूपी पवित्र जल में स्नान करने से संसार की वासना और अज्ञान रूपी मल घुल जाते हैं । गीता को ही सुन्दर कण्ठ से जीवन भर गावो अन्य शास्त्रों के अभ्यास और गाने से क्या प्रयोजन ! जिस मंगलमयी दिव्य गीता को भगवान विष्णु ने अपने मुख से गाया (कथन किया) ॥ ३–४ ॥

भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम् । गीता गङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः । पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

भारत में अमृत स्वरूपिणी भगवान विष्णु के मुख से निकली हुई गीता रुपी गङ्गा के जल को पीकर पुनर्जन्म नहीं होता है । सम्पूर्ण उपनिषद् गाय हैं और उनको दोहने वाले कृष्ण हैं, और पार्थ दुग्ध पान करने वाला बछड़ा है, और गीता का अमृत रूपी दुग्ध दोहन किया है ॥ ५–६ ॥

कृष्णवृक्ष–समुद्भूता, गीतामृत हरीतकी । मानुषैः किं नु खाद्येत, कलौ-मल विरेचनी ॥
सब वेदमयी–गीता सर्व धर्म–मयो मनुः । सर्व–तीर्थ–मयी गङ्गा सर्व देवमयो हरिः ॥

भगवान कृष्ण रूपी वृक्ष पर गीतामृत रूपी हरीतकी ऐ मानव ! कलि के मल को दूर करने के लिए क्यों नहीं सेवन करता । गीता सम्पूर्ण वेदों के तत्व को प्रदर्शित करने वाली मनु सम्पूर्ण धर्मों के मर्म को जानने वाले और गङ्गा जी समस्त तीर्थ रूपिणी हैं तथा भगवान विष्णु सर्व देवमय है ॥ ७–८ ॥

गङ्गा गीता तथा भिक्षुः कपिलाश्वत्थसेवनम् । वासरं पद्मनाभस्य पावनं किं कलौयुगे ॥
गीतासारमिदं शास्त्रं सर्वशास्त्रसुनिश्चितम् । यत्रस्थितं ब्रह्मज्ञानं वेदशास्त्रसुनिश्चितम् ॥

गङ्गा जी का स्नान, गीता का पठन-पाठन तथा दीन पात्र को भिक्षा देना, कपिला गौ और अश्वत्थ बृक्ष सेवन, हरिवासर (एकादशी) इनमें और कोई पवित्र करने वाला साधन कलियुग में नहीं है। गीता सर्व शास्त्र स्वरूपिणी सम्पूर्ण शास्त्रों का निश्चित सिद्धांत और गीता शास्त्र में संपूर्ण वेदों के निश्चित ब्रह्मज्ञान का विवेचन है ॥ ९–१० ॥

गीतागङ्गा च गायत्री, गोविन्देतिहृदिस्थिते। चतुर्गकार संयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥
यस्यान्तःकरणं नित्यं गीतायां रमते सदा। स साग्निकःसदाजापी क्रियावान् स च पंडितः ॥

जिस व्यक्ति के हृदय में गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द का सम्यक् बोध, विवेचन एवं चिन्तन है उस का पुनर्जन्म नहीं होता। जिसका अन्तःकरण सदा गीता के अध्ययन में सुख मानता है वही अग्निहोत्री, वही जप करने वाला और वही पंडित है ॥ ११–१२ ॥

गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्यं पाठश्च वर्तते। तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि भूतले ॥
पादस्याप्यर्द्ध-पादं वा श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा। नित्यं धारयते यस्तु, स मोक्षमधिगच्छति ॥

जिस घर में गीता ग्रन्थ है तथा गीता पाठ होता है वहां प्रयागादि समस्त तीर्थ निवास करते हैं। गीता का एक पद या आधा पद तथा एक श्लोक भी नित्य मनन करने वाला मानव मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ १३–१४ ॥

यत्र गीता-विचारश्चपठनं पाठनं तथा। मोदते तत्र भगवान् कृष्णो राधिकया सह ॥
इद शास्त्रं मया प्रोक्तं गुह्यवेदार्थ दर्पणम्। यः पठेद् प्रयतो भूत्वा स गच्छेद्विष्णुशाश्वतम् ॥

जिस स्थान पर गीता का विचार तथा पठन पाठन होता है उस स्थान पर भगवान कृष्ण राधिका के सहित प्रसन्न रहते हैं। इस मंगलमय गीता शास्त्र का मैंने वर्णन किया जो कि वेदों के रहस्यमय तत्त्व को प्रकाशित करने वाला है। जो भक्त एकाग्र मन से इसका अध्ययन करता है वह भगवान विष्णु के परम पद को प्राप्त होता है ॥ १५–१६ ॥

गीतामाश्रित्य बहवो, भूभुजो जनकादयः। निर्धूतकल्मषा लोके गीता याताः परं पदम् ॥
गीताभ्यास पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुत्तमाम्। गीतेत्युच्चार संयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत ॥

गीता के अध्ययन एवं सिद्धान्त के अनुसार चलने वाले जनकादि बहुत से राजा बन्धन मुक्त होकर विष्णु के शाश्वत धाम को प्राप्त कर गये। गीता का अभ्यास करने वाला मुक्ति प्राप्त करता है गीता का उच्चारण कर मरने वाला प्राणी उत्तम गति प्राप्त करता है ॥ १७–१८ ॥

गीतार्थंध्यायते नित्यं कृत्वाकर्माणि भूरिशः। जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो देहान्ते परमं पदम् ॥
माहात्म्यमेतद्गीताया मया प्रोक्तं सनातनम्। गीतान्ते च पठेद्यस्तु यदुक्तं तत्फलं लभेत् ॥

जो निरन्तर गीता के अर्थ का ध्यान करता है, कर्मों को करने पर भी उसके बन्धनों से से निर्मुक्त है, वह जीवन्मुक्त है और मरने पर वह उत्तम गति प्राप्त करता है। गीता जी के इस माहात्म्य को गीता के बाद निरन्तर पढ़ने वाला गीतोक्त उत्तम फल को प्राप्त करता है ॥१९-२०॥

❋ ॐ श्री परमात्मने नमः ❋

अथ श्रीमद्भगवद्-गीता

प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः । मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥

धृतराष्ट्र बोला—हे संजय ! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में इकट्ठे हुए युद्ध की इच्छा वाले मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया ? ॥ १ ॥

Dhritarashtra said : Sanjaya, gathered on the sacred soil of Kurukshetra, eager to fight, what did my children and the children of Pandu do ? (1)

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा । आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् । व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥

इस पर संजय बोला—उस समय राजा दुर्योधन ने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवों की सेना को देख कर और द्रोणाचार्य के पास जाकर यह वचन कहा ॥२॥ हे आचार्य ! आपके बुद्धिमान शिष्य द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रों की इस बड़ी भारी सेना को देखिये ॥३॥

Sanjaya said : At that time, seeing the army of the Pandavas drawn up for battle and approaching Dronacharya, King Duryodhana spoke these words Behold, Master, the mighty army of the sons of Pandu arrayed for battle by your talented pupil, Dhrstadyumna, son of Drupada. (2-3)

★ ★

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि । युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् । पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् । सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥

इस सेना में बड़े-बड़े धनुषवाले युद्ध में भीम और अर्जुन के समान बहुत से शूरवीर हैं, जैसे सात्यकि और बिराट तथा महारथी राजा द्रुपद ॥४॥ और धृष्टकेतु, चेकितान तथा बलवान

काशिराज, पुरुजित, कुन्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य ।। ५ ।। और पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पांचों पुत्र यह सब ही महारथी हैं ।। ६ ।।

There are in this army heroes wielding mighty bows and equal in military prowess to Bhima and Arjuna -- Satyaki and Virata and the Maharathi (Warrior chief) Drupada, Dhrstaketu, Chekitana and the valiant King of Kasi, and Purujit, Kuntibhoja, and Saibya, the best of men, and mighty Yudhamanyu, and valiant Uttamauja, Abhimanyu, the son of Subhadra, and the five sons of Draupadi - all of them Maharathis (warrior chiefs). (4, 5, 6)

★ ★

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम । नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ।।
भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः । अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्थैव च ।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! हमारे पक्ष में भी जो-जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिए, आपके जानने के लिए मेरी सेना के जो-जो सेनापति हैं उनको कहता हूँ ।। ७ ।। एक तो स्वयं आप और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्राम-विजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा ।। ८ ।।

O best of Brahmans, know them also who are the principal warriors on our side, - the generals of my army. For your information, I mention them below - Yourself and Bhishma and Karna and Kripa, ever is were victorious in battle; and even so Ashwatthama, Vikarna and Bhurisrava (the son of Somadatta). (7-8)

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः । नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ।।
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् । पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ।।

तथा और भी बहुत से शूरवीर अनेक प्रकार के शस्त्र-अस्त्रों से युक्त मेरे लिए जीवन की आशा को त्यागने वाले सब के सब युद्धमें चतुर हैं ।।९।। और भीष्मपितामह द्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकार से अजेय है और भीमद्वारा रक्षित इन लोगों की यह सेना जीतने में सुगम है ।।१०।।

And there are many other heroes, equipped with various weapons and missiles, who have staked their lives for me,all skilled in warfare. This army of ours, fully protected by Bhishma; is unconquerable; while that army of theirs, guarded in every way by Bhima, is easy to conquer. (9-10)

★ ★

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः । भीष्ममेवा भिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ।।
तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः । सिंहनादं विनद्योच्चैःशंङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।।

इसलिए सब मोर्चों पर अपनी-अपनी जगह स्थिर रहते हुए आप लोग सब-के-सब ही निःसन्देह भीष्मपितामह की ही सब ओर से रक्षा करें ।। ११ ।। इस प्रकार द्रोणाचार्य से कहते हुए दुर्योधन

के वचनों को सुनकर कौरवों में वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्म ने उस दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्चस्वर से सिंह की नाद के समान गर्जकर शङ्ख बजाया ॥१२॥

Therefore, stationed in your respective positions on all fronts, do you all guard Bhishma in particular on all sides. The grand old man of the Kaurava race, their glorious grand-uncle Bhishma, cheering up Duryodhana, roared terribly like a lion and blew his conch. (11-12)

★ ★

ततःशङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः । सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥
ततःश्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ । माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥

उसके उपरान्त शङ्ख और नगारे तथा ढोल, मृदङ्ग और नृसिंहादि बाजे एक साथ ही बजे, उनका वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ ॥१३॥ इसके अनन्तर सफेद घोड़ों से युक्त उत्तम रथ में बैठे हुए श्री कृष्ण महाराज और अर्जुन ने भी अलौकिक शङ्ख बजाये ॥१४॥

Then conches, kettledrums, tabors, drums and trumpets suddenly blared forth and the noise was tumultuous. Then, seated in a glorious chariot drawn by white horses, Sri Krishna as well as Arjuna blew their celestial chonches. (13-14)

★ ★

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः । पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥
अनन्तविजयंराजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥

उनमें श्री कृष्ण महाराज ने पाञ्चजन्य नामक शङ्ख और अर्जुन ने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया, भयानक कर्म वाले भीमसेन ने पौण्ड्र नामक महाशङ्ख बजाया ॥१५॥ कुन्तीपुत्र राजा-युधिष्ठर ने अनन्त विजय नामक शङ्ख और नकुल तथा सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक नामक वाले शङ्ख बजाये ॥१६॥

Sri Krishna blew His Conch named Panchajanya, Arjuna, his own called Devadatta, while Bhima of terrible deeds blew his mighty conch Paundra. King Yudhishtira, son of Kunti, blew his conch Anantavijaya, while Nakula and Sahadeva blew theirs, known as Sughosa and Manipushpaka respectively. (15-16)

★ ★

काश्यश्च परमेष्वासःशिखण्डी च महारथः । धृष्टद्युम्नो विराटश्चसात्यकिश्चापराजितः॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते । सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥

श्रेष्ठ धनुष वाला काशीराज और महारथी शिखण्डी और धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि ॥१७॥ तथा राजा द्रुपद और द्रौपदी के पांचोंपुत्र और बड़ी भुजा वाला सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु—इन सबने हे राजन् ! अलग-अलग शङ्ख बजाये ॥१८॥

And the excellent archer, the King of Kashi, and Shikhandi the Maharathi (great car-warrior), Dhrishtadyumna and Virata and invincible Satyaki, Drupada as well as the five sons of Draupadi, and the mighty armed Abhimanyu, son of Subhadra, all of them, O Lord of the earth, severally blew their respective conches from all sides. (17-18)

★ ★

स घोषोधार्तराष्ट्राणां हृदयानिव्यदारयत् । नभश्च पृथिवींचैव तुमुलो व्यनुनादयन् ।।

और उस भयानक शब्द ने आकाश और पृथ्वी को भी शब्दायमान करते हुये धृतराष्ट्र पुत्रों के हृदय विदीर्ण कर दिये ।। १९ ।।

And the terrible sound, echoing through heaven and earth, rent the hearts of Dhrita-rashrta's sons. (19)

★ ★

अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः । प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्यपाण्डवः ।।
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते । सेनयोरु भयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।।

हे राजन ! उसके उपरान्त कपिध्वज अर्जुन ने खड़े हुए धृतराष्ट्र पुत्रों को देखकर उस शस्त्र चलने की तैयारी के समय धनुष उठाकर हृषोकेश श्रीकृष्ण महाराज से यह वचन कहा—हे अच्युत ! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करिये ।। २०-२१ ।।

Now, O Lord of the earth, seeing your sons arrayed against him, and when missiles were ready to be hurled, Arjuna, son of Pandu, took up his bow and then addressed the following words to Sri Krishna, "Krishna, place my chariot between the two armies". (20-21)

★ ★

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धकामानवस्थितान् । कैर्मया सहयोद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं यएतेऽत्र समागताः । धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।।

जब तक मैं इन स्थित हुए युद्ध की कामना वालों को अच्छी प्रकार देख लूं कि इस युद्ध रूप व्यापार में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना योग्य है ।।२२।। और दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में कल्याण चाहने वाले जो-जो ये राजा लोग इस सेना में आये हैं, उन युद्ध करने वालों को मैं देखूंगा ।।२३।।

And keep it there till I have carefully observed these warriors drawn up for battle, and have seen with whom I have to engage in this fight. I shall scan the well-wishers of evil-minded Duryodhana, in this war. Who have assembled on this side and are ready for the fight. (22-23)

★ ★

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् । उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥

संजय बोला, हे धृतराष्ट्र ! अर्जुन द्वारा इस प्रकार कहे हुए महाराज श्री कृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने और सम्पूर्ण राजाओं के सामने उत्तम रथ को खड़ा कर के ऐसे कहा कि, हे पार्थ ! इन इकट्ठे हुए कौरवों को देख ॥ २४-२५ ॥

Sanjaya said—O king, thus addressed by Arjuna, Shri Krishna placed the magnificent chariot between the two armies in front of Bhishma, Drona, and all the kings and said, "Arjuna, behold these Kauravas assembled here." (24-25)

★ ★

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान्। आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा॥
श्वसुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि । तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

उसके उपरान्त पृथापुत्र अर्जुन ने उन दोनों ही सेनाओं में स्थित हुए पिता के भाइयों को, पितामहों को, आचार्यों को, मामों को, पुत्रों को, पौत्रों को तथा मित्रों को, ससुरों को और सुहृदों को भी देखा । इस प्रकार उन खड़े हुए सम्पूर्ण बन्धुओं को देख कर वह अत्यन्त करुणा से युक्त हुआ कुन्ती पुत्र अर्जुन शोक करता हुआ यह बोला ॥ २६-२७ ॥

Now Arjuna saw stationed there in both the armies his uncles, grand-uncles and teachers, even great grand-uncles, maternal-uncles, brothers and cousins, sons and nephews, and grand-nephews. even so friends, fathers-in-law and well wishers as well. Seeing all those relations present there, Arjuna was filled with deep compassion, and uttered these words in sadness. (26, 27 and first half of 28)

★ ★

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति । वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥

हे कृष्ण ! इस युद्ध की इच्छा वाले खड़े हुए स्वजन समुदाय को देख कर मेरे अङ्ग शिथिल हुए जाते हैं और मुख भी सूखा जाता है और मेरे शरीर में कम्प तथा रोमाञ्च होता है ॥२८-२९॥

Arjuna said—Krishna, at the sight of these kinsmen arrayed for battle my limbs give way, and my mouth is parching nay, a shiver runs through my body and hair stands upright. (2nd half of 28 and 29)

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते । न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव । न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥

तथा हाथ से गाण्डीव धनुष गिरता है और त्वचा भी बहुत जलती है तथा मेरा मन भ्रमित सा हो रहा है, इसलिये मैं खड़ा रहने को भी समर्थ नहीं हूँ ॥ ३० ॥ और हे केशव ! लक्षणों को भी विपरीत ही देखता हूँ तथा युद्ध में अपने कुल को मार कर कल्याण भी नहीं देखता ॥३१॥

The bow, Gandiva, slips from my hand and my skin too burns all over, my brain is whirling, as it were, and I can stand no longer. And, Keshava, I see such omens of evil, nor do I see any good in killing my kinsmen in battle. (30–31)

★ ★

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च। किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥

और हे कृष्ण ! मैं विजय को नहीं चाहता और राज्य तथा सुखों को भी नहीं चाहता, हे गोविन्द ! हमें राज्य से क्या प्रयोजन है अथवा भोगों से और जीवन से भी क्या प्रयोजन है ॥३२॥

Krishna, I do not covet victory, nor kingdom nor pleasurs. Govinda, of what use will kingdom, or luxuries, or even life be to us ! (32)

★ ★

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च। तइमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः। मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाः सम्बन्धिनस्तथा॥
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन । अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

क्योंकि हमें जिनके लिये राज्य भोग और सुखादिक इच्छित हैं वे ही यह सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर युद्ध में खड़े हैं। जो कि गुरुजन, ताऊ, चाचे, लड़के और वैसे ही दादा, मामा, ससुर, पोते साले तथा और भी सम्बन्धी लोग आये हैं। इसलिये हे मधुसूदन ! मुझे मारने पर भी अथवा तीन लोक के राज्य के लिये भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता, फिर पृथ्वी के लिये तो कहना ही क्या है ॥ ३३-३४-३५ ॥

Those very persons for whose sake we covet the throne, luxuries and pleasures, – teachers uncles, sons and nephews and even so grand-uncles and great grand-uncles, meternal uncles father-in-law, grand–nephews, brothers–in–law and other relations, are here arrayed on the battle–field risking their lives and wealth. O Slayer of Madhu, I do not want to kill them though they should slay me, even for the throne of the three worlds; how much the less for earthly Lordship ! (33-34-35)

★ ★

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन । पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम-माधव ॥

हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर भी हमें क्या प्रसन्नता होगी, इन आततायियों को मार कर तो हमें पाप ही लगेगा ॥ ३६ ॥ इससे हे माधव ! अपने बान्धव धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने के लिये हम योग्य नहीं हैं, क्योंकि अपने कुटुम्ब को मार कर हम कैसे सुखी होंगे ॥ ३७ ॥

Krishna, what joy can we derive through slaying the sons of Dhritarashtra ? Sin alone will accrue to us as the result of killing these desperadoes. Therefore, Krishna, it does not behove us to kill our relations, the sons of Dhritarashtra. For how shall we be happy after killing our own kinsmen ? (36-37)

★ ★

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः । कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् । कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥

यद्यपि लोभ से भ्रष्टचित्त हुए यह लोग कुल के नाशकृत दोष को और मित्रों के साथ विरोध करने में पाप को नहीं देखते हैं । परन्तु हे जनार्दन ! कुल के नाश करने से होते हुए दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिये ॥ ३८-३९ ॥

Although these people, with minds blinded by greed, do not perceive the evil of destruction of one's own race and the sin accruing from enemity towards friends; why should not we, O Krishna, who see clearly the sin involved in the destruction of one's family, think of turning away from this crime ? (38-39)

★ ★

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः । धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः । स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥

क्योंकि कुल के नाश होने से सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्म के नाश होने से संपूर्ण कुल को पाप भी बहुत दबा लेता है । तथा हे कृष्ण ! पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं और हे वार्ष्णेय ! स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकर उत्पन्न होता है ॥४०-४१॥

Age-long family traditions disappear with the destruction of a family; and virtue having been lost, sin takes hold of the entire family. With the preponderance of vice, Krishna, the women of the family become corrupt; and with the corruption of women, O Varshneya (descendant of Vrshni), there ensues an intermixture of castes. (40-41)

★ ★

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च । पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः । उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥

और वह वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जाने के लिये ही होता है। लोप हुई पिण्ड और जल की क्रिया वाले इनके पितर लोग भी गिर जाते हैं। और इन वर्णसंकर-कारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुल धर्म और जाति धर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ४२-४३ ॥

Intermixture of castes leads the destroyers of the race as well as the race itsef to hell. Deprived of the offerings of lumps of riee and water (Shraddha, Tarpana, etc.), the names of their race alos fall. Through these evils bringing about an intermixture of castes, the age-long caste-traditions and family-customos of the destroyers of the race get extinct. (42-43)

★ ★

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन । नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् । यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥

तथा हे जनार्दन ! नष्ट हुए कुल धर्म वाले मनुष्यों का अनन्तकाल तक नरक में वास होता है, ऐसा हमने सुना है। अहो ! शोक है कि, हम लोग बुद्धिमान होकर भी महान् पाप करने को तैयार हुए हैं, जो कि, राज्य और सुखके लोभसे अपने कुलको मारनेके लिये उद्यत हुए हैं ॥४४-४५॥

Krishna, we hear that men who have lost their family traditions dwell in hell for an indefinite period of time. Alas ! Though possessed of intelligence, we have set our mind on the commission of a great sin in that due to lust for throne and enjoyment we are intant on killing our own kinsmen. (44-45)

★ ★

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः । धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

यदि मुझ शस्त्र रहित, न सामना करने वाले को शस्त्रधारी धृतराष्ट्र के पुत्रगण में मारें तो वह मरना भी मेरे लिये अति कल्याण कारक होगा ॥४६॥

It would be better for me if the sons of Dhritarashtra, armed with weapons, killed me in battle while I was unarmed and unresisting (46)

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥

संजय बोला कि, रणभूमि में शोक से उद्विग्न मन वाला अर्जुन इस प्रकार कह कर बाण सहित धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया ॥ ४७ ॥

Arjuna, with his mind agitated by grief on the battle field, having spoken thus, and having laid down his bow and arrows, snak into the hinder part of his chariot. (47)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुन संवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सञ्जय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् । विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥

संजय बोला कि पूर्वोक्त प्रकार से करुणा करके व्याप्त और आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान मधुसूदन ने यह वचन कहा ॥ १ ॥

Sanjaya said: Shri Krishna then addressed the following words to Arjuna, who was as mentioned before overwhelmed with pity, whose eyes were filled with tears and agitated, and who was full of sorrow. (1)

★ ★

श्री भगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् । अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते । क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

हे अर्जुन ! तुमको इस विषम स्थल में यह अज्ञान किस हेतु से प्राप्त हुआ ? क्योंकि यह न तो श्रेष्ठ पुरुषों से आचरण किया गया है न स्वर्ग को देने वाला है, न कीर्ति को करने वाला है। इसलिये हे अर्जुन ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, यह तेरे में योग्य नहीं है, हे परंतप ! तुच्छ हृदय की दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिये खड़ा हो ॥ २-३ ॥

Shri Bhagavan said–Arjuna, how has this infatuation overtaken you at this odd hour ? It is shunned by noble souls; neither will it bring heaven, nor fame, to you. Yield not to unmanliness, Arjuna; ill does it become you. Shaking off this paltry faint-heartedness stand up, O scorcher of enemies. (2–3)

★ ★

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन । इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥

तब अर्जुन बोला कि, हे मधुसूदन ! मैं रणभूमि में भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के प्रति किस प्रकार बाणों से युद्ध करूंगा, क्योंकि हे अरिसूदन ! वे दोनों ही पूजनीय हैं ॥ ४ ॥

Arjuna, said—How, Krishna, shall I fight Bhishma and Drona with arrows on the battle-field ? They are worthy of deepest reverence, O destroyer of foes. (4)

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ।।

इसलिये इन महानुभाव गुरूजनों को न मारकर इस लोक में भिक्षा का अन्न भी भोगना कल्याणकारक समझता हूँ, क्योंकि गुरुजनों को मार कर भी इस लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और कामरुप भोगों को ही तो भोगूंगा ।। ५ ।।

It is better to live on alms in this world without slaying these noble elders, because even after killing them we shall after all enjoy only bloodstained pleasures in the form of wealth and sense-enjoyments. (5)

★ ★

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।।

और हम लोग यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये क्या करना श्रेष्ठ है अथवा यह भी नहीं जानते कि हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे और जिनको मार कर हम जीना भी नहीं चाहते वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने खड़े हैं ।। ६ ।।

We do not even know which is preferable for us – to fight or not to fight; nor do we know whether we shall win or whether they will conquer us. Those very sons of Dhritarashtra, killing whom we do not even wish to live, stand in the enemy ranks (6)

★ ★

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितंब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।

इसलिये कायरता रूप दोष से उपहत हुए स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ मैं, आपको पूछता हूँ, जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याण कारक साधन हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ इसलिये आपके शरण हुए मुझ को शिक्षा दीजिये ।।७।।

With my very being tainted by the vice of faint-heartedness, and my mind puzzled with regard to duty, I am asking you. Tell me that which is decidedly good; I am your disciple. Pray instruct me; who has put myself into Your hands. (7)

★ ★

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।।

क्योंकि भूमि में निष्कण्टक धन-धान्य सम्पन्न राज्य को और देवताओं के स्वामीपने को प्राप्त होकर भी, मैं उस उपाय को नहीं देखता हूँ, जो कि मेरी इन्द्रियों के सुखाने वाले शोक को दूर कर सके ॥ ८ ॥

For even on obtaining undisputed sovereignty and an affluent kingdom on this earth and Lordship over the gods, I do not see any means that can drive away the grief which is drying up my senses. (8)

★ ★

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप । न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥
तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥

संजय बोला, हे राजन ! निद्रा को जीतने वाला अर्जुन फिर अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज के प्रति इस प्रकार कहकर हे श्रीगोविन्द भगवान ! मैं युद्ध नहीं करूंगा ऐसे स्पष्ट कहकर चुप हो गया । उसके उपरान्त हे भरतवंशी धृतराष्ट्र ! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज ने दोनों सेनाओं के बीच में उस शोक युक्त अर्जुन को हंसते हुए से यह वचन कहा ॥ ९-१० ॥

Sanjaya said—O king, having thus spoken to Shri Krishna, Arjuna again said to Him, "I will not fight," and became silent. Then, O Dhritarashtra, Shri Krishna, as if smiling addressed the following words to sorrowing Arjuna, in the midst of the two armies. (9-10)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥
न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः । न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

हे अर्जुन ! तू न शोक करने योग्यों के लिये शोक करता है और पण्डितों के से वचनों को कहता है, परन्तु पण्डितजन जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये भी नहीं शोक करते हैं । क्योंकि आत्मा नित्य है, इसलिये शोक करना अयुक्त है । वास्तव में न तो ऐसा ही है कि, मैं किसी काल में नहीं था अथवा तू नहीं था अथवा यह राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे ॥ ११-१२ ॥

Shri Bhagavan said - Arjuna, you grieve over those who should not be grieved for and yet speak like the learned; wise men do not sorrow over the dead or the living. In fact, there was never a time when I was not, or when you or these kings were not. Nor is it a fact that hereafter we shall all cease to be. (11-12)

★ ★

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा । तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।
मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।

किन्तु जैसे जीवात्मा की इस देह में कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, उस विषय में धीर पुरुष नहीं मोहित होता है अर्थात् जैसे कुमार युवा और जरा अवस्था रूप स्थूल शरीर का विकार अज्ञान से आत्मा में भासता है, वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होना सूक्ष्म शरीर का विकार भी अज्ञान से आत्मा में भासता है, इसलिये तत्त्व को जानने वाला धीर पुरुष इस विषय में नहीं मोहित होता है। हे कुन्तीपुत्र ! सर्दी गर्मी और सुख-दुःख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो क्षणभङ्गुर और अनित्य हैं, इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन ! उनको तू सहन कर ।। १३-१४ ।।

Just as boyhood, youth and old age are attributed to the soul through this body, even so it attains another body, The wise man does not get deluded about this. O son of Kunti, the contacts between the senses and their objects, which give rise to the feeling of heat and cold, plearsure and pain etc., are transitory and fleeting; therefore, Arjuna, ignore them. (13–14)

★ ★

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ । समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः । उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्व दर्शिभिः ।।

क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! दुःखसुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को यह इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते वह मोक्ष के लिये योग्य होता है। और हे अर्जुन असत् वस्तु का तो अस्तित्व नहीं है और सत् का अभाव नहीं है, इस प्रकार इन दोनों का ही तत्त्व ज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है ।। १५-१६ ।।

Arjuna, the wise man whom pain and pleasure are alike, and who is not tormented by these contacts, becomes *eligible for immortality.* The unreal has no exsitence, and the real never ceases to be; the reality of both has thus been perceived by the seers of truth. (15–16)

★ ★

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् । विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।।
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः । अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।

इस न्याय के अनुसार नाश रहित तो उसको जान कि, जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, क्योंकि इस अविनाशी का विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है। और इस नाशरहित अप्रमेय नित्य स्वरूप जीवात्मा के यह सब शरीर नाशवान कहे गये हैं, इसलिये हे भरतबंशी अर्जुन ! तू

युद्ध कर। और जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इस को मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते हैं, क्योंकि यह आत्मा न मारता है और न मारा जाता है ॥ १७-१८-१९ ॥

Know that alone to be imperishable, which pervades this universe; for no one has power to destory this indestructible substance. All these bodies pertaining to the imperishable, indefinable the eternal soul are spoken of as perishable; therefore, Arjuna, fight. They are both ignorant, he who knows the soul to be capable of killing and he who takes it as killed; for verily the soul neither kills, nor is killed (17–18–19)

★ ★

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा हो कर के फिर होने वाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है ॥ २० ॥

The soul is never born nor dies; not does it become only after being born. For it is unborn, eternal, everlasting and ancient; even though the body is slain, the soul is not. (20)

★ ★

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् । कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्मा को नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है ॥२१॥

Arjuna, the man who knows this soul to be imperishable, eternal and free from birth and decay, – how and whom will he causc to be killed, how and whom will he kill ? (21)

★ ★

वासांसि जीर्णानि यथाविहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

और यदि तू कहे कि मैं तो शरीर के वियोग का शोक करता हूँ तो यह भी उचित नहीं है, क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

As a man shedding worn-out garments, takes other new ones, likewise the embodied soul, casting off worn-out bodies; enters into others which are new. (22)

★ ★

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः । न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योयऽमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

और हे अर्जुन ! इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं और इसको आग नहीं जला सकती है तथा इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता है । क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है तथा यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है ॥ २३-२४ ॥

Weapons cannot cut it nor can fire burn it; water cannot wet it nor can wind dry it. For this soul is incapable of being cut; it is proof against fire, impervious to water and undriable as well. This soul is eternal, omnipresent, immovable, constant and everlasting. (23–24)

★ ★

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते । तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् । तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥

और यह आत्मा अव्यक्त अर्थात इन्द्रियों का अविषय और यह आत्मा अचिन्त्य अर्थात मन का अविषय और यह आत्मा विकार रहित अर्थात न बदलने वाला कहा जाता है इससे हे अर्जुन इस आत्मा को ऐसा जान कर तू शोक करने योग्य नहीं है, अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है । और यदि तू इसको सदा जन्मने और सदा मरने वाला माने तो भी, हे अर्जुन ! इस प्रकार शोक करने योग्य नहीं है ॥ २५-२६ ॥

This soul is unmanifest; it is unthinkable; and it is spoken of as immutable. Therefore knowing this as such, you should not grieve. And, Arjuna, if you should suppose this soul to be subject to constant birth and death, even then you should not grieve like this. (25–26)

★ ★

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत । अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

क्योंकि ऐसा होने से तो जन्मने वाले की निश्चित मृत्यु और मरने वाले का निश्चित जन्म होना सिद्ध हुआ, इससे भी तू इस बिना उपाय वाले विषय में शोक करने के योग्य नहीं है । और यह भीष्मादिकों के शरीर मायामय होने से अनित्य हैं, इससे शरीरों के लिये भी शोक करना उचित नहीं, क्योंकि हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहिले बिना शरीर वाले और मरने के बाद भी बिना शरीर वाले ही हैं, केवल बीच में ही शरीर वाले प्रतीत होते हैं, फिर उस विषय में क्या चिन्ता है ॥ २७-२८ ॥

For in that case death is certain for the born, and rebirth is inevitable for the dead. You should not, therefore, grieve over the inevitable. Arjuna, before birth beings are not manifest

to our human senses; at death they return to the unmanifest again. They are manifest only in the interim between birth and death. What occasion, then, for lamentation. (27-28)

★ ★

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥

और हे अर्जुन ! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है इसलिये कोई महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की भांति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरूष ही आश्चर्य की भांति इसके तत्त्व को कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्मा को आश्चर्य की भांति सुनता है और कोई-कोई सुन कर भी इस आत्मा को नहीं जानता ॥ २९ ॥

Hardly anyone perceives this soul as marvellous, scarce another likewise speaks thereof as marvellous, and scarce another hears of it as marvellous; while there are some who know it not even on hearing of it. (29)

★ ★

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत । तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥
स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि । धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

हे अर्जुन ! यह आत्मा सबके शरीर में सदा ही अवध्य है, इसलिये सम्पूर्ण भूत प्राणियों के लिये तू शोक करने योग्य नहीं है । और अपने धर्म को देखकर तू भय करने को योग्य नहीं है, क्योंकि धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारक कर्तव्य क्षत्रिय के लिये नहीं है ॥३०-३१॥

Arjuna, this soul dwelling in the bodies of all can never be slain; therefore, you should not mourn for anyone. Besides, considering your own duty too you should not waver; for there is nothing more welcome for a man of the warrior class than a righteous war. (30-31)

★ ★

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् । सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥
अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि । ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥

और हे पार्थ ! अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं। और यदि तू इस धर्म युक्त संग्राम को नहीं करेगा तो स्वधर्म को और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा ॥ ३२-३३ ॥

Arjuna; happpy are the Ksatriyas who get such an unsolicited opportunity for war; which opens the door to heaven. Now, if you refuse to fight this righteous war, then, shirking your duty and losing your reputation, you will incur sin. (32-33)

★ ★

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् । संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥
भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः । येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥

और सब लोग तेरी बहुत काल तक रहने वाली अपकीर्ति का भी कथन करेंगे और वह अपकीर्ति माननीय पुरूष के लिये मरण से भी अधिक बुरी होती है । और जिनके तू बहुत माननीय होकर भी अब तुच्छता को प्राप्त होगा, वे महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से उपराम हुआ मानेंगे ॥ ३४-३५ ॥

Nay, people will also pour undying infamy on you and infamy brought on a man enjoying popular esteem is worse than death. And the warrior-chiefs who thought highly of you, will now despise you,thinking that it was fear which drove you from battle. (34–35)

★ ★

अवाच्य वादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः । निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसेमहीम् । तस्मादुत्तिष्ठकौन्तेय युद्धायकृतनिश्चयः ॥

और तेरे बैरी लोग तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए बहुत से न कहने योग्य वचनों को कहेंगे, फिर उससे अधिक दुःख क्या होगा ? इससे युद्ध करना तेरे लिये सब प्रकार से अच्छा है, क्योंकि या तो मरकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा जीतकर पृथ्वी को भोगेगा, इससे हे अर्जुन ! युद्ध के लिये निश्चय वाला होकर खड़ा हो ॥ ३६-३७ ॥

And your enemies, disparaging your might, will speak many unbecoming words, what can be more distressing than this ? Die, and you will win heaven; conquer, and you enjoy sovereignty of the earth; therefore, stand up, Arjuna, determined to fight. (36–37)

★ ★

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ । ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥
एषातेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमांश्रृणु । बुद्धया युक्तो ययापार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्य की इच्छा न हो तो भी सुख-दुःख लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझकर उसके उपरान्त युद्ध के लिये तैयार हो, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा । हे पार्थ ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोग के विषय में कही गयी और इसी को अब निष्काम कर्मयोग के विषय में सुन कि जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन को अच्छी तरह से नाश करेगा ॥ ३८-३९ ॥

Treating alike victory and defeat, gain and loss, pleasure and pain, get ready for the fight, then; fighting thus you will not incur sin. Arjuna, this attitude of mind has been presented to you from the point of view of Jnanayoga; now hear the same as presented from the stand-

point of Karmayoga (the Yoga of selfless action). Equipped with this attitude of mind, you will be able to throw off completely the shackles of Karma. (38-39)

★ ★

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते । स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥
व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन । बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥

और इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उल्टा फल-रूप दोष भी नहीं होता है, इसलिये इस निष्काम कर्मयोगरूप धर्म का थोड़ा भी साधन, जन्म-मृत्यु रूप महान भय से उद्धार कर देता है । और हे अर्जुन ! इस कल्याण मार्ग में निश्चयात्मक बुद्धि एक ही है और अज्ञानी (सकामी) पुरुषों की बुद्धियां बहुत भेदों वाली अनन्त होती हैं ॥ ४०-४१ ॥

In this path (of disinterested action) there is no loss of effort, nor is there fear of contrary result. Even a little practice of this discipline saves one from the terrible fear of birth and death. Arjuna, in this Yoga (of disinterested action) the intellect is determinate and directed singly toward one ideal; whereas the intellect of the undecided (ignorant men moved by desires) wanders in all directions, after innumerable aims. (40-41)

★ ★

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः । वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्म कर्म फलप्रदाम् । क्रियाविशेष बहुलां भोगैश्वर्य गतिं प्रति ॥
भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तया पहृत चेतसाम् । व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

और हे अर्जुन ! जो सकामी पुरुष केवल फल श्रुति में प्रीति रखने वाले, स्वर्ग को ही परम श्रेष्ठ मानने वाले इससे बढ़कर और कुछ नहीं है ऐसे कहने वाले हैं वे अविवेकीजन जन्मरूप कर्म फल को देने वाली और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये बहुत सी क्रियाओं के विस्तार वाली इस प्रकार की जिस दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहते हैं । उस वाणी द्वारा हरे हुए चित्तवाले तथा भोग और ऐश्वर्य में आसक्ति वाले उन पुरुषों के अन्तःकरण में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है ॥ ४२-४३-४४ ॥

Arjuna, those who are full of wordly desires and devoted of to the letter of the Vedas, who look upon heaven, as the supreme goal and argue that there is nothing beyond heaven are unwise. They utter flowery speech recommending many rituals of various kinds for the attainment of pleasure and power with rebirth as their fruit. Those whose minds are carried away by such words, and who are deeply attached to pleasure and worldly power, cannot attain the determinate intellect concentrated on God. (42-43-44)

★ ★

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेमआत्मवान् ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके । तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।

और हे अर्जुन ! सब वेद तीनों गुणोंके कार्य रूप संसार को विषय करने वाले अर्थात् प्रकाश करने वाले हैं इसलिये तू असंसारी अर्थात् निष्कामी और सुख दुःखादि द्वन्द्वों से रहित नित्य वस्तु में स्थित तथा योग क्षेम को न चाहने वाला और आत्म परायण हो । क्योंकि मनुष्य का सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे जलाशय में जितना प्रयोजन रहता है अच्छी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मण का भी सब वेदों में उतना ही प्रयोजन रहता है अर्थात् जैसे बड़े जलाशय के प्राप्त हो जाने पर जल के लिये छोटे जलाशयों की आवश्यकता नहीं रहती वैसे हो ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होने पर आनन्द के लिये वेदों की आवश्यकता नहीं रहती ।। ४५-४६ ।।

Arjuna, the Vedas thus deal with the evolutes of the three Gunas (modes of Prakriti), viz, worldly enjoyments, be thou indifferent to these enjoyments, and their means, rising above pairs of opposites like pleasure and pain etc., established in the Eternal Existence (God), absolutely unconcerned about the supply of wants and the preservation of what has been already attained; and self controlled. A Brahman, who has obtained enlightenment, has the same use for all the Vedas as one who stands at the brink of a sheet of water overflowing on all sides has for a small reservoir of water. (45-46)

★ ★

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय । सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते

इससे तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे। हे धनंजय! आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, यह समत्वभाव ही योग नाम से कहा जाता है ।। ४७-४८ ।।

Your right is to work only, but never to the fruit thereof Be not instrumental in making your actions bear fruit, nor let your attachment be to inaction. Arjuna, perform your duties established in Yoga, renouncing attachment, and even-tempered in success and failure; evenness of temper is called Yoga. (47-48)

★ ★

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय । बुद्धौ शरण मन्विच्छ कृपणाः फल हेतवः ।।
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते । तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

इस समत्व रूप बुद्धि रूप से सकाम कर्म अत्यन्त तुच्छ है इसलिये हे धनंजय ! समत्वबुद्धि योग का आश्रय ग्रहण कर क्योंकि फल की वासना वाले अत्यन्त दीन हैं । और समत्व बुद्धि युक्त पुरुष पुण्य पाप दोनों को इस लोक में ही त्याग देता है, अर्थात् उनसे लिपायमान नहीं होता,

इससे समत्व बुद्धियोग के लिये ही चेष्टा कर यह समत्वबुद्धिरूप योग ही कर्मों में चतुरता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है ।। ४९-५० ।।

Action, (with a selfish motive) is far inferior to this Yoga in the form of equanimity. Do you seek refuge in this equipoise of mind, Arjuna; for poor and wretched are those who are instrumental in making their actions bear fruil. Endowed with equanimity, one sheds in this life both good and evil. Therefore, strive for the practice of this Yoga of equanimity. Skill in action lies in (the practice of this) Yoga (49-50)

★ ★

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलंत्यक्त्वा मनीषिणः । जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।
यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला । समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।

क्योंकि बुद्धियोग युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्याग कर जन्म-रूप बन्धन से छूटे हुए, निर्दोष अर्थात् अमृतमय परमपद को प्राप्त होते हैं । और हे अर्जुन ! जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को बिल्कुल तर जायगी तब तू सुनने योग्य और सुने हुए के वैराग्य को प्राप्त होगा । और जब तेरी अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनने से विचलित हुई बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में अचल और स्थिर ठहर जायगी तब तू समत्वरूप योग को प्राप्त होगा ।। ५१-५२-५३ ।।

For wise men possessing an equipoised mind, renouncing the fruit of actions and freed from the shackles of birth, attain the blissful supreme state. When your mind will have fully crossed the mire of delusion, you will then grow indifferent to the enjoyments of this world and the next that have been heard of as well as to those that are yet to be heard of. When your intellect, confused by hearing conflicting statements, will rest, steady and undistracted (in medit tion) on God, you will then attain Yoga (for lasting union with God). (51-52-53)

★ ★

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव । स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेतकिम् ।।

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन ने पूछा, हे केशव! समाधिमें स्थित स्थिरबुद्धि वाले पुरुष का क्या लक्षण हैं ? और स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है ? कैसे बैठता है ? कैसे चलता है ।। ५४ ।।

Arjuna, said ; Kuishna, what is the definition (mark) of a God-realized soul, stable of mind and established in Samadhi (perfect tranquillity of mind) ? How does the man of stable mind speak, how does he sit; how does he walk ? (54)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् । आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतराग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले हे अर्जुन ! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है उस काल में आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट हुआ स्थिरबुद्धि वाला कहा जाता है । तथा दुःखों की प्राप्ति में उद्वेगरहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में दूर हो गयी है स्पृहा जिसकी तथा नष्ट हो गये हैं राग, भय और क्रोध जिसके ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है ॥ ५५-५६ ॥

Shri Bhagavan said : Arjuna, when one thoroughly dismisses all cravings of the mind, and is satisfied in the self through (the joy of) the self, then he is called stable of mind. The sage, whose mind remains unperturbed amid sorrows, whose thirst for pleasures has altogether disappeared, and who is free from passion, fear and anger, is called stable of mind. (55–56)

★ ★

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् । नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

और जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ तथा अशुभ वस्तुओं को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है । और कछुवा अपने अङ्गों को जैसे समेट लेता है वैसे ही यह पुरुष जब सब ओर से अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है ॥ ५७-५८ ॥

He who is unattached to everything, and meeting with good and evil, neither rejoices nor recoils, his mind is stable. When like a tortoise, which draws in its limbs from all directions, he withdraws his senses form the sense-objects, his mind is [should be considered as) stable. [57–58]

★ ★

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः । रसवर्ज रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु राग नहीं निवृत्त होता और इस पुरुष का तो राग भी परमात्मा को साक्षात् करके निवृत्त हो जाता है । और हे अर्जुन ! जिससे कि यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के भी मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियां बलात्कार से हर लेती हैं ॥ ५९-६० ॥

Sense-objects turn away from him, who does not enjoy them with his senses; but the taste for them persists. This relish also disappears in the case of the man of stable mind when he sees the Supreme. Turbulent by nature, the senses even of a wise man, who is practising self-control, forcibly carry away his mind, Arjuna. [59-60]

★ ★

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः । वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते । सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

इसलिये मनुष्य को चाहिये कि उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में कर के समाहितचित्त हुआ मेरे परायण स्थित होवे, क्योंकि जिस पुरुष के इन्द्रियां वश में होती हैं, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है । और हे अर्जुन ! मन सहित इन्द्रियों को वश में कर के मेरे परायण न होने से मन के द्वारा विषयों का चिन्तन होता है और विषयों को चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है ॥ ६१-६२ ॥

Therefore, having controlled the all and collecting his mind one should sit for meditation, devoting oneself heart and soul to Me. For he, whose senses are mastered, is known to have a stable mind. The man dwelling on sense-objects develops attachment for them; from attachment springs up desire, and from desire (unfulfilled) ensues anger. (61-62)

★ ★

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् । आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

और क्रोध से अविवेक अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है और स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश होने से यह पुरुष अपने श्रेयसाधन से गिर जाता है । परन्तु स्वाधीन अन्तःकरण वाला पुरुष रागद्वेष से रहित अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता अर्थात् स्वच्छता को प्राप्त होता है ॥ ६३-६४ ॥

From the anger arises infatuation; from infatuation; confusion of memory; from confusion of memory, loss of reason; and from loss of reason one goes to complete ruin. But the self-cotrolled practicant, while enjoying the various sense-objects through his senses, which are disciplined and free from likes and dislikes, attains placidity of mind, (63-64)

★ ★

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते । प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना । न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

और उस निर्मलता के होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है । और हे अर्जुन ! साधन रहित पुरुष के अन्तःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त के अन्तःकरण में आस्तिकभाव भी नहीं होता और बिना आस्तिकभाव वाले पुरुष को शान्ति भी नहीं होती, फिर शान्ति रहित पुरुष को सुख कैसे हो सकता है ।। ६५-६६ ।।

With the attainment of such placidity of mind, all his sorrows come to an end; and the intellect of such a person of tranquil mind, soon withdrawing itself from all sides, becomes firmly established in God. He who has not controlled his mind and senses can have no reason; nor can such an undisciplined man think of God. The unthinking man can have no peace; and how can there be happiness for one lacking peace of mind ? (65-66)

★ ★

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते । तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।।
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी । यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः

क्योंकि जल में वायु नाव को जैसे हर लेता है वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के बीच में जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धि को हरण कर लेती है । इससे हे महाबाहो ! जिस पुरुष की इन्द्रियां सब प्रकार के इन्द्रियों के विषयों से वश में की हुई होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है और हे अर्जुन ! सम्पूर्ण भूतप्राणियों के लिये जो रात्रि है उस नित्य शुद्ध बोध स्वरूप परमानन्द में भगवत् को प्राप्त हुआ योगी पुरुष जागता है और जिस नाशवान क्षणभंगुर सांसारिक सुख में सब भूतप्राणी जागते हैं तत्त्व को जानने वाले मुनि के लिये वह रात्रि है ।। ६७-६८-६९ ।।

As the wind carries away a boat upon the waters; even so of the senses moving among sense-objects; the one to which the mind is joined takes away his discrimination. Therefore; Arjuna, he; whose senses are completely restrained from their objects; is said to have a stable mind. That which is night to all beings, in that state (of Divine Knowledge and Supreme Bliss) the God-realized Yogi keeps awake. And that (the everchanging, transient worldy happiness) in which all beings keep awake is night to the seer. (67-68-69)

★ ★

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्ति माप्नोति न कामकामी ।।

और जैसे सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र के प्रति नाना नदियों के जल उसको चलायमान न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही जिस स्थिरबुद्धि पुरुष के सम्पूर्ण भोग किसी

प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं वह पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, न कि भोगों को चाहने वाला ॥ ७० ॥

As the waters of different rivers enter the ocean, which, though full on all sides remains undisturbed, likewise he in whom all enjoyments merge themselves attains peace; not he who hankers after cuch enjoyments. (70)

★ ★

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः । निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति । स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति

क्योंकि जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममता रहित और अहङ्कार रहित, स्पृहा-रहित हुआ बर्तता है वह शान्ति को प्राप्त होता है । हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है, इसको प्राप्त होकर मोहित नहीं होता है और अन्तकाल में भी इस निष्ठा में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है ॥ ७१-७२ ॥

He who has given up all desires, and moves free from attachment, egoism and thirst for enjoyment attains peace. Arjuna, such is the state of the God-realized soul; having reached this state, he overcomes delusion. And established in this state, even at the last moment, he attains Brahmic Bliss. (71-72)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्-गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



अथ तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन । तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे । तदेकं वद निश्चित्य येनश्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥

इस पर अर्जुन ने प्रश्न किया कि हे जनार्दन ! यदि कर्मों की अपेक्षा ज्ञान आपके श्रेष्ठ मान्य है तो फिर हे केशव ! मुझे भयंकर कर्म में क्यों लगाते हैं ? तथा आप मिले हुए से वचन से मेरी बुद्धि को मोहित सी करते हैं, इसलिए उस एक बात को निश्चय करके कहिये, कि जिससे मैं कल्याण को प्राप्त होऊँ ॥ १-२॥

Arjuna said : Krishna, if You consider Knowledge as superior to Action, why then do You urge me to this dreadful action, Keshava ! You are, as it were, puzzling my mind by seemingly involved expressions; therefore, tell me definitely the one discipline by which I may obtain the highest good. (1-2)

★ ★

श्री भगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ । ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥
न कर्मणा रम्भनाभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते । न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधि गच्छति ॥

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर भगवान श्रीकृष्ण महाराज बोले—हे निष्पाप अर्जुन ! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मेरे द्वारा पहिले कही गई है, ज्ञानियों की ज्ञानयोग से और योगियों की निष्काम कर्मयोग से । परन्तु किसी भी मार्ग के अनुसार कर्मों को स्वरूप से त्यागने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मनुष्य न तो कर्मों के न करने से निष्कर्मता को प्राप्त होता है और न कर्मों को त्यागने मात्र से भगवत्-साक्षात्काररूप सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ ३-४ ॥

Shri Bhagavan said ; Arjuna, in this world two courses of Sadhana (spiritual discipline) have been enunciated by Me in the past. In the case of the Sankhyayogi, the sadhana proceeds along the path of Knowledge; whereas in the case of the Karmayogi, it proceeds along the path of Acion. Man does not attain freedom from action (culmination of the discipline of Action) without entering upon action; nor does he reach perfection (culmination of the discipline of Knowledge) merely by ceasing to act. (3-4)

★ ★

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्म कृत् । कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणैः ॥
कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् । इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते

तथा सर्वथा कर्मों का स्वरूपसे त्याग हो भी नहीं सकता, क्योंकि कोई भी पुरुष किसी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म कियेनहीं रहता है, निःसन्देह सब ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुये गुणोंद्वारा परवश हुये कर्म करते हैं । इसलिये जो मूढ़बुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियों को हठ से उत्पन्न कर, इन्द्रियों के भोगों का मनसे चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है ॥ ५-६ ॥

Surely none can ever remain inactive even for a moment; for everyone is helplessly driven to action by nature-born qualities. He who outwordly restraining the organs of sense and action, sits mentally dwelling on the objects of senses, that man of deluded intellect is called a hypocrite. (5–6)

★ ★

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन । कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥
नियतंकुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥

और हे अर्जुन ! जो पुरुष मनसे इन्द्रियोंको वशमें करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियोंसे कर्मयोगका आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है । इसलिये तू शास्त्रविधिसे नियत किये हुये स्वधर्मरूप कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा ॥ ७ - ८ ॥

On the other hand, he who controlling the organs of sense and action by the power of his will, and remaining unattached, undertakes the Yoga of Action through those organs, Arjuna, he excles. Therefore, do you perform your allotted duty; for action is superior to inaction. Desisting from action, you cannot even maintain your body. (7–8)

★ ★

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः । तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

और हे अर्जुन ! बन्धन के भय से भी कर्मों का त्याग करना योग्य नहीं है, क्योंकि यज्ञ अर्थात् विष्णुके निमित्त किये हुये कर्म के सिवाय अन्य कर्म में लगा हुआ ही यह मनुष्य कर्मोंद्वारा बंधता है, इसलिये हे अर्जुन! आसक्ति से रहित हुआ उस परमेश्वर के निमित्त, कर्म का भली प्रकार आचरण कर । तथा कर्म न करने से तू पाप को भी प्राप्त होगा, क्योंकि प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञसहित प्रजा को रच कर कहा, कि इस यज्ञ द्वारा तुमलोग बृद्धि को प्राप्त होवो और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित कामनाओं के देने वाला होवे ॥ ९-१० ॥

Man is bound by his own action except when it is performed for the sake of sacrifice. Therefore, Arjuna, do you efficiently perform your duty, free from attachment; for the sake of sacrifice alone. Having created mankind along with the spirit of sacrifice at the beginning of creation the Creator, Brhama, said to them. "You shall prosper by this; may this yield the enjoyment you seek. (9–10)

★ ★

देवान्भावयतानेन ते देवा भवायन्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभावितः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥

तथा तुमलोग इस यज्ञद्वारा देवताओं की उन्नति करो और वे देवता लोग तुम लोगों की उन्नति करें इस प्रकार आपस में कर्तव्य समझ कर उन्नति करते हुये परम कल्याण को प्राप्त होओगे । तथा यज्ञ द्वारा बढ़ाये हुये देवतालोग तुम्हारे लिये बिना मांगे ही प्रिय भोगों को देंगे उनके द्वारा दिये हुये भोगों को जो पुरुष देवताओं बिना दिये हो भोगता है वह निश्चय चोर है ॥ ११-१२ ॥

"Foster the gods through this (sacrifice), and let the gods be gracious to you. Each fostering other disinterestedly, you will attain the highest good. Fostered by sacrifice, the gods will surely bestow on you unasked all the desired enjoyments" He who enjoys the gifts bestowed by them, without giving them in return, is undoubtedly a thief. (11–12)

★ ★

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः । भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः । यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भव ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् । तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

कारण, कि यज्ञ से शेष बचे हुये अन्न को खाने वाले श्रेष्ठपुरुष सब पापोंसे छूटते हैं औरजो पापी लोग अपने शरीर के पोषण के लिये ही पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं । क्योंकि प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है और वृष्टि यज्ञ से होती है और वह यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होने वाला है । तथा उस कर्म को तू वेद से उत्पन्न हुआ जान और वेद अविनाशी परमात्मा ही उत्पन्न हुआ है, इससे सर्वव्यापी परम अक्षर, परमत्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है ॥ १३-१४-१५ ॥

The virtuous who partake of what is left over after sacrifice are absolved of all sins. Those sinful ones who cook for the sake of nourishing their body alone eat only sin. All beings are evolved from food; production of food is dependent on rain; rain ensues from sacrifice, and sacrifice is rooted in prescribed action. Know that prescribed action has its origin in the Vedas, and the Vedas proceed from the Indestructible (God); hence the all-pervading Infinite is always present in sacrifice. (13–14–15)

★ ★

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः । अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।।
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः । आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।।

हे पार्थ ! जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार चलाये हुये सृष्टिचक्र के अनुसार नहीं बर्तता है अर्थात् शास्त्र के अनुसार कर्मों को नहीं करता है, वह इन्द्रियों के सुख को भोगने वाला पाप-आयु पुरुष व्यर्थ ही जीता है । परन्तु जो मनुष्य आत्मा में ही प्रीति वाला और आत्मामें तृप्त तथा आत्मा में ही संतुष्ट होवे, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है ।। १६-१७ ।।

Arjuna, he who does not follow the wheel of creation thus set going in this world (i.e., does not perform his duties), sinful and sensual, he lives in vain. He, however, who takes delight in the Self alone and is gratified with the Self, and is contented in the Self, has no duty. (16–17)

★ ★

नैव तस्य कृते नार्थो नाकृतेनेह कश्चन । न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।।
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर । असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।

क्योंकि इस संसार में उस पुरुष का किये जाने से भी कोई प्रयोजन नहीं है और न किये जाने से भी कोई प्रयोजन नहीं है तथा उसका सम्पूर्ण भूतों में कुछ भी स्वार्थ सम्बन्ध नहीं है, तो भी उसके द्वारा केवल लोक हितार्थ कर्म किये जाते हैं । इससे तू अनासक्त हुआ निरन्तर कर्तव्य कर्म का अच्छी प्रकार आचरण कर, क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्माको प्राप्त होता है ।।१८-१९।।

In this world that great soul has no use whatsoever for things done nor for things not done; nor has he selfish depencence of any kind on any creature. Therefore, go on efficiently doing your duty without attachment. Doing work without attachment man attains the Supreme. (18–19)

★ ★

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः । लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ।।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ।।

इस प्रकार जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुये हैं, इसलिये तथा लोक संग्रह को देखता हुआ भी तू कर्म करने को ही योग्य है । क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है अन्य पुरुष भी उसके अनुसार ही बर्तते हैं, वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है लोग भी उसके अनुसार बर्तते हैं ।। २०-२१ ।।

It is through action (without attachment.) alone that Janaka and other wise men reached perfection. Having an eye to maintenance of the world order too you should take to action.

For whatever a great man does, that very thing other men also do; whatever standard he sets up, the generality of men follow the same. (20–21)

★ ★

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन । नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः । मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

इसलिये हे अर्जुन ! यद्यपि मुझे तीनों लोकों में कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा किञ्चित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है, तो भी मैं कर्म में ही बर्तता हूँ । क्योंकि यदि मैं सावधान हुआ कदाचित् कर्म में न बर्तूं तो हे अर्जुन ! सब प्रकार से मनुष्य मेरे बर्ताव के अनुसार बर्तते हैं अर्थात् बर्तने लग जांय ॥ २२-२३ ॥

Arjuna, there is nothing in all the three worlds for Me to do, nor is there anything worth attaining unattained by Me; yet I continue to work. Should I not engage in action, scrupulously at any time, great harm will come to the world; for, Arjuna, men follow My way in all matters. (22–23)

★ ★

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् । संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

तथा यदि मैं कर्म न करूं तो यह सब लोक भ्रष्ट हो जांय और मैं वर्णसंकर का करने वाला होऊं तथा इस सारी प्रजा को हनन करूं अर्थात् मारने वाला बनूं । इसलिये हे भारत ! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानीजन जैसे कर्म करते हैं वैसे ही अनासक्त हुआ विद्वान भी लोक शिक्षा को चाहता हुआ कर्म करे ॥ २४-२५ ॥

If I cease to act, these worlds will perish; nay, I should prove to be the cause of confusion, and of the destruction of these people. Arjuna, as the unwise act with attachment, so should the wise man, seeking maintenance of the world order, act without attachment (24–25)

★ ★

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् । जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥
प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

तथा ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे, किन्तु स्वयं परमात्मा के स्वरूप में स्थित हुआ और सब कर्मों को अच्छी प्रकार करता हुआ, उनसे भी वैसे ही करावे । और हे अर्जुन ! वास्तव में सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये हुए हैं, तो भी अहंकार से मोहित हुए अन्तःकरण वाला पुरुष मैं कर्ता हूँ ऐसे मान लेता है ॥ २६-२७ ॥

A wise man established in the Self should not unsettle the mind of the ignorant attached to action, but should get them to perform all their duties, duly perform his own duties. All actions are being performed by the modes of Prakriti (Primordial Matter). The fool, whose mind is deluded by egoism, thinks: "I am the doer." (26–27)

★ ★

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्म विभागयोः । गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥
प्रकृतेर्गुण संमूढाः सज्जन्ते गुण कर्मसु । तान्कृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥

परन्तु हे महाबाहो ! गुण-विभाग और कर्म-विभाग के तत्त्व को जानने वाला ज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण गुण गुणों में बर्तते हैं ऐसे मान कर आसक्त नहीं होता है । और प्रकृति के गुणों से मोहित हुए पुरुष गुण और कर्मों में आसक्त होते हैं, उन अच्छी प्रकार न समझने वाले मूर्खों को अच्छी प्रकार जानने वाला ज्ञानी पुरुष चलायमान न करे ।। २८-२९ ।।

He, however, who has true insight into the respective spheres of Gunas (modes of Prakriti) and their actions holding that it is the Gunas (in the shape of the senses, mind, etc.,) that move among the Gunas (objects of perception), does not get attached to them, Arjuna. Those who are completely deluded by the Gunas (modes) of Prakriti remain attached to those Gunas and actions, the man of perfect Knowledge should not unsettle the mind of those insufficiently knowing fools. (28–29)

★ ★

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्म चेतसा । निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥
ये मे मतमिदं नित्य मनुतिष्ठन्ति मानवाः । श्रद्धावन्तोऽन सूयन्तो मुच्यन्तेतेऽपि कर्मभिः ॥

इसलिये हे अर्जुन ! तू ध्याननिष्ठ चित्त से सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में समर्पण करके आशा रहित और ममता रहित होकर, सन्तापरहित हुआ युद्ध कर । और हे अर्जुन ! जो कोई भी मनुष्य दोष बुद्धि से रहित और श्रद्धा से युक्त हुए सदा ही मेरे इस मत के अनुसार बर्तते हैं, वे पुरुष सम्पूर्ण कर्मों से छूट जाते हैं ।। ३०-३१ ।।

Therefoe, dedicating all actions to Me with your mind fixed on Me, the Self of all, free from hope and the feeling of meum and cured of mental fever, fight. Even those men who, with an uncavilling and devout mind, always follow this teaching of mine are released from the bondage of all actions. (30–31)

★ ★

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् । सर्वज्ञान्विमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि । प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥

और जो दोष दृष्टि वाले मूर्खलोग इस मेरे मत के अनुसार नहीं बर्तते हैं, उन सम्पूर्ण ज्ञानों

में मोहित चित्त वालों को तू कल्याण से भ्रष्ट हुये ही जान। क्योंकि सभी प्राणी प्रकृति को प्राप्त होते हैं, अर्थात् अपने स्वभाव से परवश हुए कर्म करते हैं, ज्ञानवान भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है, फिर इस में किसी का हठ क्या करेगा ॥ ३२-३३ ॥

They, however, who, finding fault with this teaching of .. ine, do not follow it, take those fools to be deluded in the matter of all knowledge, and lost. All living creatures follow their tendencies; even the wise man acts according to the tendencies of his own nature. What use is any external restraint ? (32–33)

★ ★

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ। तयोर्न वशमा गच्छेत्तौह्यस्य परिपन्थिनौ ॥
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

इसलिये मनुष्य को चाहिये कि इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थ में अर्थात् सभी इन्द्रियों के भोगों में स्थित जो राग और द्वेष हैं उन दोनों के वश में नहीं होवे, क्योंकि इसके वे दोनों ही कल्याण मार्ग में विघ्न करने वाले महान शत्रु हैं। इसलिये उन दोनों को जीत कर सावधान हुआ स्वधर्म का आचरण करे, क्योंकि अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है, अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है और दूसरे का धर्म भय देने वाला है ॥ ३४-३५ ॥

Attraction and repulsion are rooted in all sense-objects. Man should never allow himself to be swayed by them, because they are the two principal enemies standing in the way of his redemption. One's own duty, though devoid of merit, is preferable to the duty of another well performed. Even death in the performance of one's own duty brings blessedness; another's duty is fraught with fear. (34–35)

★ ★

अर्जुन उवाच

अथ केनप्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

इस पर अर्जुन ने पूछा कि हे कृष्ण ! फिर यह पुरुष बलात्कार से लगाये हुए के सदृश न चाहता हुआ भी किससे प्रेरा हुआ पाप का आचरण करता है ॥ ३६ ॥

Arjuna said : Now impelled by what, Krishna, does this man commit sin even involuntarily. as though driven by forec ? (36)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च। यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह ही महाअशन अर्थात् अग्नि के सदृश भोगों से न तृप्त होने वाला और बड़ा पापी है बस विषय में इसको तू वैरी जान। जैसे धुएं से अग्नि और मल से दर्पण ढका जाता है तथा जैसे जेर से गर्भ ढका हुआ है, वैसे ही उस काम के द्वारा यह ज्ञान ढका हुआ है ।। ३७-३८ ।।

Shri Bhagavan said : It is desire begotten of the element of Rajas, which appears as wrath; nay, it is insatiable and grossly wicked. Know this to be the enemy in this case. As a flame is coverd by smoke, mirror by dirt, and embryo by thc amnion, so is Knowledge covered by it (desire). (37-38)

★ ★

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्य वैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते । एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्यदेहिनम् ।।

और हे अर्जुन ! इस अग्नि सदृश न पूर्ण होने वाले काम रूप ज्ञानियों के नित्य वैरी से ज्ञान ढका हुआ है। तथा इन्द्रियां, मन और बुद्धि इसके वास स्थान कहे जाते हैं और यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके इस जीवात्मा को मोहित करता है ।। ३९-४० ।।

And, Arjuna, Knowledge stands coverd by this eternal enemy of the wise, known as desire, which is insatiable like fire. The senscs, the mind and the intellect are declared to be its seat; screening the light of Truth through these; it (desire) deludes thc embodied soul. (39-40)

★ ★

तस्मात्त्व मिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ । पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धे परतस्तु सः ।।
एवं बुद्धेः परं बुद्धवा संस्तभ्यात्मानमात्मना। जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।।

इसलिये तू पहले इन्द्रियों को वश में करके, ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाले इस काम पापी को निश्चय पूर्वक मार। और यदि तू समझे कि इन्द्रियों को रोक कर काम-रूप बैरी को मारने की मेरी शक्ति नहीं है तो तेरी यह भूल है क्योंकि इस शरीर से तो इन्द्रियों को परे (श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म) कहते हैं और इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है और जो बुद्धि से भी अत्यन्त परे है वह आत्मा है। इस प्रकार बुद्धि से परे अर्थात् सूक्ष्म तथा सब प्रकार बलवान और श्रेष्ठ अपने आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में कर के हे महाबाहो अपनी शक्ति को समझ कर इस दुर्जय कामरूप शत्रु को मार ।। ४१-४२-४३ ।।

Therefore, Arjuna, you must first control you senses; and then kill this evil thing which obstructs Jnana (Knowledge of the Absolute or Nirguna Brahma) and Vijnana (Knowleege of Sakara Brahma or manifest Divinity). The senses are said to be greater than the body; but greater than the senses is the mind. Greater than the mind is the intellect; and what is greater than the intellect is he (the Self). Thus, Arjuna, knowing that which is higher than the intellcet and subduing the mind by reason, kill this enemy in the form of Desire that is hard to overcome. (41-42-43)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्-गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-विद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् । विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।।
एवं परम्पराप्राप्त मिमं राजर्षयो विदुः । स कालेनेह महतायोगो नष्टः परंतप ।।
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः । भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।।

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में सूर्य के प्रति कहा था और सूर्य ने अपने पुत्र मनु के प्रति कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु के प्रति कहा । इस प्रकार परम्परा से प्राप्त हुए इस रोग को राजर्षियों ने जाना परन्तु हे अर्जुन ! वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लोप (प्रायः) हो गया था । वह ही यह पुरातन योग अब मैंने तेरे लिये वर्णन किया है, क्योंकि तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है इसलिये यह योग बहुत उत्तम और रहस्य पूर्ण अर्थात् अति मर्म का विषय है ।। १-२-३ ।।

Shri Bhagavan said — I taught this immortal Yoga to Vivaswan (Sungod); Vivaswan conveyed it to Manu (his son); and Manu imparted it to (his son) Ikshwaku. Thus transmitted in succession from father to son, Arjuna, this Yoga remained known to the Rajarsis (royal sages). It has, however, long since disappeared from this earth. The same ancient Yoga has this day been imparted to you by Me, because you are My devotee and friend; and also because this is a supreme secret. (1-2-3)

★ ★

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः। कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र महाराज के वचन सुनकर अर्जुन ने पूछा, हे भगवन ! आपका जन्म तो आधुनिक अर्थात् अब हुआ है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है, इसलिये इस योग को कल्प के आदि में आपने कहा था यह मैं कैसे जानूं ?॥ ४ ॥

Arjuna said – You are of recent origin, while the birth of Vivaswan dates back to remote antiquity. How, then, am I to believe that You taught this Yoga at the beginning of creation ?

★ ★

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥

इस पर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं, परन्तु हे परंतप ! उन सबको तू नहीं जानता है और मैं जानता हूँ। तथा मेरा जन्म प्राकृत मनुष्यों के सदृश नहीं है, मैं अविनाशी स्वरूप, अजन्मा होने पर भी तथा सब भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को अधीन कर के योगमाया से प्रकट होता हूँ ॥ ५-६ ॥

Shri Bhagavan said — Arjuna, you and I have passed through many births, I remember them all; you do not remember, O chastiser of foes. Though birthless and deathless, and the Lord of all beings, I manifest Myself through My own Yogamaya (divine potency), keeping My Nature (Prakriti) under control. (5-6)

★ ★

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही मैं अपने रूप को रचाता हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ। क्योंकि साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिये, युग-युग में प्रकट होता हूँ ॥ ७-८ ॥

Arjuna, whenever righteousness is on the decline, and unrighteousness is in the ascendant, then I body Myself forth For the protection of the virtuous, for the extirpation of evil-doers, and for establishing Dharma (righteousness) on a firm footing, I am born from age to age. (7-8)

★ ★

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः । त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥
वीतराग भय क्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः । बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥

इसलिये हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है, इस प्रकार जो पुरुष तत्त्व से जानता है वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता है, किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है । और हे अर्जुन ! पहिले भी राग, भय और क्रोध से रहित अनन्यभाव से मेरे में स्थिति वाले मेरे शरण हुये बहुत से पुरुष ज्ञान रूप तप से पवित्र हुए मेरे स्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥ ९-१० ॥

Arjuna, My birth and activities are divine. He who knows this in reality is not reborn on leaving his body, but comes to Me. Completely rid of passion, fear and anger, wholly absorbed in Me, depending on Me, and purified by the penance of wisdom, many have become one with Me even in the past. [9–10]

★ ★

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् । मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः । क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥

क्योंकि हे अर्जुन ! जो मेरे को जैसा भजते हैं मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ, इस रहस्य को जानकर ही बुद्धिमान मनुष्यगण सब प्रकार से मेरे मार्ग के अनुसार बर्तते हैं । और जो मेरे तत्त्व को नहीं जानते हैं, वे पुरुष इस मनुष्य लोक में कर्मों के फल चाहते हुए देवताओं को पूजते हैं और उनके कर्मों से उत्पन्न हुई सिद्धि भी शीघ्र ही प्राप्त होती है परन्तु उनको मेरी प्राप्ति नहीं होती इसलिए तू मेरे को ही सब प्रकार से भज ॥ ११-१२ ॥

Arjuna, howsoever men seek Me; even so do I approach them; for all men follow My path in every way. In this world of human beings, men seeking the fruition of their activities worship the gods; for success born of actions follows quickly. [11–12]

★ ★

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः । तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा । इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥

तथा हे अर्जुन ! गुण और कर्मों के विभाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं, उनके कर्ता को भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू अकर्ता ही जान । क्योंकि कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मेरे को कर्म लिपायमान नहीं करते, इस प्रकार जो मेरे को तत्त्व से जानता है, वह भी कर्मों से नहीं बधता है ॥ १३-१४ ॥

The four orders of society [viz, the Brahman, the Kshartiya, the Vaishya and the Shubra] were created by Me classifying them according to the mode of Prakriti predominant

in each and apportioning corresponding duties to them; though the auther of this creation, know Me, the immortal Lord to be a non-doer. Since I have no craving for the fruit of actions; actions do not contaminate Me. Even who thus knows Me in reality is not bound by actions [13-14]

★ ★

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः। कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥
किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

तथा पहिले होने वाले मुमुक्षु पुरुषों द्वारा भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किया गया है, इससे तू भी पूर्वजों द्वारा सदा से किये हुये कर्म को ही कर। परन्तु कर्म क्या है और अकर्म का क्या है ? ऐसे इस विषय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हैं, इसलिये मैं वह कर्म अर्थात् कर्मों का तत्त्व तेरे लिये अच्छी प्रकार कहूँगा, कि जिसको जान कर तू अशुभ अर्थात् संसार बन्धन से छूट जायगा ॥ १५-१६ ॥

Having known thus, action was performed even by the ancient seekers for liberation; therefore, do you also perform such actions as have been performed by the ancients from the beginning of time. What is action ? and what is inaction ? Even men of intelligence are puzzled over this question. Therefore, I shall expound to you the truth about action, knowing which you will be freed from its evil effect (binding nature). (15-16)

★ ★

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥
कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा निषिद्ध-कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति गहन है। जो पुरुष कर्म में अर्थात् अहंकार रहित की हुई सम्पूर्ण चेष्टाओं में अकर्म अर्थात् वास्तव में उनका न होनापना देखे और जो पुरुष अकर्म में अर्थात् अज्ञानी पुरुष द्वारा किये हुये सम्पूर्ण क्रियाओं के त्याग में भी कर्म को अर्थात् त्यागरूप क्रिया को देखे वह पुरुष मनुष्यों में बुद्धिमान् है और वह योगी सम्पूर्ण कर्मों का करने वाला है ॥ १७-१८ ॥

The truth about action must be known and the truth of inaction also must be known; even so the truth about prohibited action must be known. For mysterious are the ways of action. He who sees inaction in action. and action in inaction, is wise among men; he is a yogi, who has performed all actions. (17-18)

★ ★

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥

और हे अर्जुन ! जिसके सम्पूर्ण कार्य कामना और संकल्प से रहित हैं ऐसे उस ज्ञान-रूप अग्नि द्वारा भस्म हुए कर्मों वाले पुरुष को ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं। और जो पुरुष सांसारिक आश्रय से रहित सदा परमानन्द परमात्मा में तृप्त है, वह कर्मों के फल और सङ्ग अर्थात् कर्तृव्य अभिमानको त्यागकर कर्ममें अच्छी प्रकार बर्तता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है ॥१९-२०॥

Even the wise call him a sage, whose undertakings are all free from desire and thoughts of the world, and whose actions are burnt up by the fire of wisdom. He who, having totally given up attachment to actions and their fruit, no longer depends on the world, and is ever satisfied, does nothing at all, though fully engaged in action. (19-20)

★ ★

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः। शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥
यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः। समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥

और जीत लिया है अन्तःकरण और शरीर जिसने, तथा त्याग दी है सम्पूर्ण भोगों की सामग्री जिसने, ऐसा आशा रहित पुरुष केवल शरीर सम्बन्धी कर्म को करता हुआ भी पाप को नहीं प्राप्त होता है। और अपने आप जो कुछ आ प्राप्त हो उसमें ही सन्तुष्ट रहने वाला और हर्ष शोक आदि द्वन्द्वों से अतीत हुआ तथा मत्सरता अर्थात् ईर्ष्या से रहित सिद्धि और असिद्धि में समत्वभाव वाला पुरुष कर्मों को करके भी नहीं बंधता है ॥ २१-२२ ॥

Having subdued his mind and body, and given up all objects of enjoyment, and free from craving; he who performs sheer bodily action does not incur sin. The Karmayogi, who is contented with whatever is got unsought, is free from jealousy and has transcended all pairs of opposites (like joy and grief), and is balanced in success and failure, is not bound by his action. (21-22)

★ ★

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥
ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेनगन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ॥

क्योंकि आसक्ति से रहित ज्ञान में स्थित हुए चित्त वाले यज्ञ के लिये आचरण करते हुए, मुक्त पुरुष के सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं। उन यज्ञ के लिये आचरण करने वाले पुरुषों में से कोई तो इस भाव से यज्ञ करते हैं कि अर्पण अर्थात् स्रुवादिक भी ब्रह्म है और हवि अर्थात् हवन करने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है और ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा जो हवन किया गया है वह भी ब्रह्म ही है इसलिये ब्रह्म-रूप कर्म में समाधिस्थ हुए उस पुरुष द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है वह भी ब्रह्म ही है ॥ २३-२४ ॥

All his actions melt away, who is free from attachment, who has no indentification with the body and does not claim it as his own, whose mind is established in the Knowledge of Self

and wha works merely for the sake of sacrifiec. In the practice of seeing Brahma everywhere as a form of sacrifice Brahma is the ladle (with which the oblation is poured into the fire, etc.); Brahma again, is the oblation; Brahma is the fire, Brahma itself the sacrificer, and so Brahma itself constitutes the act of pouring the oblation into the fire. And finally Brahma is the goal to be reached by him who is absorbed in Brahma as the act of such sacrifice. (23-24)

★ ★

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते । ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥
श्रोत्रादीनिन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति । शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥

और दूसरे योगीजन देवताओं के पूजन रूप यज्ञ को ही अच्छी प्रकार उपासते हैं अर्थात् करते हैं और दूसरे ज्ञानीजन परब्रह्म परमात्मा रूप अग्नि में यज्ञ के द्वारा ही यज्ञ को हवन करते हैं। और अन्य योगिजन श्रोत्रादिक सब इन्द्रियों को संयम अर्थात् स्वाधीनता-रूप अग्नि में हवन करते हैं अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से रोक कर अपने वश में कर लेते हैं और दूसरे योगी लोग शब्दादिक विषयों को इन्द्रिय-रूप अग्नि में हवन करते हैं अर्थात् राग-द्वेष रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण करते हुए भी भस्म रूप करते हैं ॥ २५-२६ ॥

Other yogis duly offer sacrifice only in the shape of worship to gods Others pour into the fire of Brahma the very sacrifice in the shape of the self through the sacrifice known as the perception of identity. Others offer as sacrifice their senses of hearing etc. into the fires of self-discipline. Other yogis, again, offer sound and other objects of perception into the fires of the senses (25-26)

★ ★

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे । आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे । स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

और दूसरे योगिजन संपूर्ण इन्द्रियों की चेष्टाओं को तथा प्राणों के व्यापार को ज्ञान से प्रकाशित हुई परमात्मा में स्थितिरूप योगाग्नि में हवन करते हैं। और दूसरे कई पुरुष ईश्वर अर्पण बुद्धि से लोक सेवा में द्रव्य लगाने वाले हैं, वैसे ही कई पुरुष स्वधर्म पालन रूप तप यज्ञ को करने वाले हैं और कई अष्टाङ्ग योग रूप यज्ञ को करने वाले हैं और दूसरे अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील पुरुष भगवान के नाम का जप तथा भगवत्प्राप्ति विषयक शास्त्रों का अध्ययन रूप ज्ञान यज्ञ के करने वाले हैं ॥ २७-२८ ॥

Others sacrifice all the functions of their senses and the functions of the vital airs into the fire of Yoga in the shape of self-control, kindled by wisdom. Some perform sacrifice with material possessions; some offer sacrifice in the shape of austerities, others sacrifice through the practice of Yoga; while some striving souls, observing austere vows, perform sacrifice in the shape of wisdom through the study of sacred texts. (27-28)

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानंपातथापरे । प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति । सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपित कल्मषाः ॥

और दूसरे योगिजन अपानवायु में प्राण वायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगिजन प्राण वायु में अपानवायु को हवन करते हैं, तथा अन्य योगिजन प्राण और आपान की गति को रोक कर प्राणायाम के परायण होते हैं । और दूसरे नियमित आहार करने वाले योगिजन प्राणों को प्राणों में ही हवन करते हैं इस प्रकार यज्ञों द्वारा नाश हो गया है पाप जिनका, ऐसे यह सब ही पुरुष यज्ञों को जानने वाले हैं ॥ २९-३० ॥

Other Yogis offer the act of exhalation into that of inhalation; even so others, the act of inhalation into that of exhalation. There are still others given to the practice of Pranayama (breath-control), who having regulated their diet and controlled the processes of exhalation and inhalation both pour their vital airs into the vital airs themselves. All these have their sins consumed away by sacrifice and understand the meaning of sacrificial worship (29–30)

★ ★

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् । नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥
एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे । कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥

और हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! यज्ञों के परिणाम स्वरूप ज्ञानामृत को भोगने वाले योगीजन, सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं और यज्ञ रहित पुरुष को यह मनुष्य लोक भी सुख-दायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा । ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञ वेद की वाणी में विस्तार किये गये हैं, उन सब को शरीर मन और इन्द्रियों की क्रिया द्वारा ही उत्पन्न होने वाला जान, इस प्रकार तत्त्वसे जानकर निष्काम कर्मयोग द्वारा संसार बन्धन से मुक्त हो जायगा ॥३१-३२॥

Arjuna, Yogis who enjoy the nectar that has been left over after the performance a sacrifice attain the eternal Brahma. To the man who does not offer sacrifice, even this world is not happy; how, then, can the other world be happy ? Many such forms of sacrifice have been set forth in detail through the mouth of the Vedas; know them all as involving the action of mind, senses and body. Thus knowing the truth about them you shall be freed from the bondage of action (through their performance). (31–32)

★ ★

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप । सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः ॥

और हे अर्जुन ! सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले यज्ञ से ज्ञानरूप यज्ञ सब प्रकार श्रेष्ठ है, क्योंकि हे पार्थ ! सम्पूर्ण यावन्मात्र कर्म ज्ञान में शेष होते हैं, अर्थात् ज्ञान उनकी पराकाष्ठा

हैं। इसलिये तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान, वे मर्म को जानने वाले ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे ॥ ३३-३४ ॥

Arjuna, sacrifice through Knowledge is superior the sacrifice performed with material things. For all actions without exception culminate in Knowledge, O son of Kunti. Understand the true nature of that Knowledge by approaching illumined soul. If you prostrate at their feet, render them service, and question them with an open and guileless heart, those wise seers of Truth will instruct you in that Knowledge. (33-34)

★ ★

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव । येन भूतान्य शेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः । सर्वंज्ञानप्लेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

जिसको जानकर तू फिर इस प्रकार मोह को नहीं प्राप्त होगा और हे अर्जुन ! जिस ज्ञान के द्वारा सर्वव्यापी अनन्त चेतन रूप हुआ अपने अन्तर्गत समष्टि-बुद्धि के आधार सम्पूर्ण भूतों को देखेगा और उसके उपरांत मेरे में अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप में एकीभाव हुआ सच्चिदानन्दमय ही देखेगा। और यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है तो भी ज्ञान रूप नौका द्वारा निःसन्देह संम्पूर्ण पापों से अच्छी प्रकार तर जायगा ॥ ३५-३६ ॥

Arjuna, when you have reached enlightenment, ignorance will delude you no more. In the light of that Knowledge you will see the entire creation first within your own self, and then in Me (the Oversoul). Even though you were the foulest of all sinners, this Knowledge alone would carry you, like a raft, across all your sin. (35-36)

★ ★

यथैधांसि समिद्धोग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते । तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

क्योंकि हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धन को भस्ममय कर देती है, वैसे ही ज्ञान रूप अग्नि संपूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है। इसलिये इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है, उस ज्ञान के कितने काल से अपने आप समत्व बुद्धि रूप योग के द्वारा अच्छी प्रकार शुद्धांत-करण हुआ पुरुष आत्मा में अनुभव करता है ॥ ३७:३८ ॥

For, as the blazing fire turns the fuel to ashes, Arjuna, even so the fire of Knowledge turns all actions to ashes. On earth there is no purifier as great as Knowledge, he who has attained purity of heart through a prolonged practice of Karmayoga automatically sees the light of Truth in the self in course of time. (37-38)

★ ★

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः । ज्ञानं लब्ध्वापरां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति । नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

और हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय तत्पर हुआ श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है, ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है । और हे अर्जुन ! भगवत विषय को न जानने वाला तथा श्रद्धा रहित और संशय युक्त पुरुष परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है, उनमें भी संशय युक्त पुरुष के लिये न तो सुख है और न यह लोक है, न परलोक है, अर्थात् यह लोक और परलोक दोनों ही उसके लिये नष्ट हो जाते हैं ॥ ३९-४० ॥

He who has mastered his senses, is exclusively devoted to his practice and is full of faith attains Knowledge; having had the revelation of Truth, he immediately attains supreme peace (in the form of God-Realization). He who lacks discrimination, is devoid of faith, and is at the same time possessed by doubt is lost to the spiritual path. For the doubting soul there is neither this world nor the world beyond, nor even happiness. (39–40)

★ ★

योगसंन्यस्त कर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् । आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥
तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः । छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥

और हे धनंजय समत्व बुद्धि रूप योग द्वारा भगवत अर्पण कर दिये हैं सम्पूर्ण कर्म जिसने और ज्ञान द्वारा नष्ट हो गये हैं सब संशय जिसके ऐसे परमात्मा परायण पुरुष को कर्म नहीं बाँधते हैं । इससे हे भरतवंशी अर्जुन ! तू समत्व बुद्धि योग में स्थित हो और अज्ञान से उत्पन्न हुए हृदय में स्थित इस अपने संशय को ज्ञान रूप तलवार द्वारा छेदन करके युद्ध के लिये खड़ा हो ॥ ४१-४२ ॥

Arjuna, actions do not bind him who has dedicated all his actions to God according to the spirit of Karmayoga, whose doubts have been torn to shreds by wisdom, and who is self-possessed. Therefore, Arjuna, slashing to pieces, with the sword of wisdom, this doubt in your heart, born of ignorance, establish yourself in Karmayoga in the shape of even-temperedness, and stand up for the fight. (41–42)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
ज्ञानकर्म संन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि । यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥

उसके उपरान्त अर्जुन ने पूछा, हे कृष्ण ! आप कर्मों के संन्यास की और फिर निष्काम कर्मयोग की प्रशंसा करते हो इसलिए इन दोनों में एक जो निश्चय किया हुआ कल्याणकारक होवे, उसको मेरे लिए कहिये ॥ १ ॥

Arjuna said ; Krishna, You extol Sankhyayoga (the Yoga of Knowledge) and then the Yoga of Action. Pray tell me which of the two is decidedly conductive to my good. (1)

★ ★

श्री भगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ । तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥
ज्ञेयः स नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न कांङ्क्षति । निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! कर्मों का संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीर द्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग और निष्काम कर्मयोग अर्थात् समत्वबुद्धि से भगवत्-अर्थ कर्मों का करना, यह दोनों ही परम कल्याण के करने वाले हैं, परन्तु उन दोनों में भी कर्मों के संन्यास से निष्काम कर्मयोग साधन में सुगम होने से श्रेष्ठ है । इसलिए हे अर्जुन ! जो पुरुष न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है वह निष्काम कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है, क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित हुआ पुरुष सुखपूर्वक संसाररूप बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ २-३ ॥

Shri Bhagavan said : The Yoga of Knowledge and the Yoga of Action both lead to supreme Bliss. Of the two, however, the Yoga of Action (being easier of practice) is superior to the Yoga of Knowledge. The Karmayogi who neither hates nor desires should be ever considered a renouncer. For, Arjuna, he who is free from the pairs of opposites is easily freed from bondage. (2-3)

★ ★

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः । एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते । एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥

और हे अर्जुन ! ऊपर कहे हुए संन्यास और निष्काम कर्मयोग को मूर्ख लोग अलग-अलग फल वाले कहते हैं न कि पण्डितजन, क्योंकि दोनों में से एक में भी अच्छी प्रकार स्थित हुआ पुरुष दोनों के फलरूप परमात्मा को प्राप्त होता है । तथा ज्ञानयोगियों द्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, निष्काम कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है । इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोग को फलरूप से एक देखता है, वह ही यथार्थ को देखता है ॥ ४-५ ॥

It is the ignorant, not the wise, who say that Sankhyayoga and Karmayoga lead to divergent results. For one who is firmly eastablished in either gets the fruit of both (which is the same, viz., God-Realization). The (supreme) state which is reached by the sankhya-yogi is attained also by the Karmayogi. Therefore, he alone who sees Sankhyayoga and Karmayoga as one (so far as their result goes) really sees. (4-5)

★ ★

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः । योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥
योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः । सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

परन्तु हे अर्जुन ! निष्काम कर्मयोग के बिना संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीर द्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत्स्वरूप को मनन करने करने वाला निष्काम कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है । तथा वश में किया हुआ है शरीर जिसके, ऐसा जितेन्द्रिय और विशुद्ध अन्तःकरण वाला एवं सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मरूप परमात्मा में एकीभाव हुआ निष्काम कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिपायमान नहीं होता ॥ ६-७ ॥

Without Karmayoga, however, Sankhyayoga (or renunciation of doership in relation to all activities of the mind, senses and body) is difficult to accomplish; whereas the Karmayogi who keeps his mind fixed on God, reaches Brahma in no time. Arjuna. The Karmayogi, who has fully conquered his mind and mastered his senses, whose heart is pure, and who has identified himself with the Self of all beings (viz., God), remains untainted, even though performing action. (6-7)

★ ★

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् । पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥

और हे अर्जुन ! तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ अर्थात् आंखों को खोलता और मीचता हुआ भी सब इन्द्रियां अपने-अपने अर्थों में बर्त रही हैं इस प्रकार समझता हुआ निःसन्देह ऐसे माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ ॥ ८-९ ॥

The Sankhyayogi, however, who knows the reality of things, must believe; even though seeing, hearing, touching, smelling, eating or drinking, walking, sleeping, breathing, speaking, answering the calls of nature, grasping, and opening, or closing the eyes, that he does nothing, holding that it is the senses that are moving among their objects. (8-9)

★ ★

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥
कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

परन्तु हे अर्जुन ! देहाभिमानियों द्वारा यह साधन होना कठिन है और निष्काम कर्मयोग सुगम है, क्योंकि जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की सदृश पाप से लिपायमान नहीं होता । इसलिए निष्काम कर्मयोगी ममत्वबुद्धि रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं ॥ १०-११ ॥

He who acts offering all actions to God, and shaking off attachment, remains untouched by sin, as the lotus leaf by water. The Karmayogis perform action only with their senses, mind, intellect and body as well; withdrawing the feeling of mine in respect of them and shaking off attachment, simply for the sake of self-purification. (10-11)

★ ★

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वाशान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् । अयुक्तः कामकारेण फलेसक्तो निबध्यते ॥
सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी । नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥

इसीसे निष्काम कर्मयोगी कर्मों के फल को परमेश्वर के अर्पण करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्ति को प्राप्त होता है और सकामी पुरुष फल में आसक्त हुआ कामना के द्वारा बंधता है, इसलिए निष्काम कर्मयोग उत्तम है । और हे अर्जुन ! वश में है अन्तःकरण जिसके, ऐसा सांख्ययोग का आचरण करने वाला पुरुष तो निःसन्देह न करता हुआ और न करवाता हुआ नौ द्वारों वाले शरीररूप घर में सब कर्मों को मन से त्यागकर अर्थात् इन्द्रियां इन्द्रियों के अर्थों में बर्तती हैं ऐसा मानता हुआ, आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है ॥ १२-१३ ॥

Offering the fruit of actions to God, the Karmayogi attains everlasting peace in the shape of God-Realization; whereas he who works with a selfish motive, being attached to the fruit of actions through desire, gets tied dowm. The self-controlled Sankhyayogi, doing nothing himself and getting nothing done by others, rests happily in God, the embodiment of Truth, Knowledge and Bliss, mentally relegating all actions to the mansion of nine gates (the body with nine openings). (12-13)

★ ★

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः । न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः । अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

और परमेश्वर भी भूत प्राणियों के न कर्त्तापन को और न कर्मों को तथा न कर्मों के फल के संयोग को वास्तव में रचता है, किन्तु परमात्मा के सकाश से प्रकृति ही बर्तती है, अर्थात् गुण ही गुणों में बर्त रहे हैं । और परमात्मा न किसी के शुभकर्म या पापकर्म को ग्रहण करता है । किन्तु माया के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं ॥ १४-१५ ॥

God determines not the doership nor the doings of men, nor even their contact with the fruit of actions; but it is Nature alone that functions. The omnipresent God does not receive the virtue or sin of anyone. Knowledge is enveloped in ignorance; hence it is that beings are constantly falling a prey to delusion. (14–15)

★ ★

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः । तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः । गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञान निर्धूत कल्मषाः ॥

परन्तु जिनका वह अन्तःकरण का अज्ञान आत्मज्ञान द्वारा नाश हो गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशता है, अर्थात् परमात्मा के स्वरूप को साक्षात् कराता है । और हे अर्जुन ! तद्रूप है बुद्धि जिनकी, तथा तद्रूप है मन जिनका और उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही है निरन्तर एकीभाव से स्थित ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञान के द्वारा पाप रहित हुए अपुनरावृत्ति को अर्थात् परम गति को प्राप्त होते हैं ॥ १६-१७ ॥

In the case, however, of those whose said ignorance has been set aside by true knowledge of God, that wisdom shining like the sun reveals the supreme. Those whose mind and intellect are wholly merged in Him, who remain constantly established in identity with Him, and have finally become one with Him, their sins being wiped out by wisdom, reach the state whence there is no return. (16–17)

★ ★

विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः । निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

ऐसे वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में समभाव से देखने वाले ही होते हैं । इसलिये जिनका मन समत्व भाव में स्थित है उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया है अर्थात् वे जीते हुए संसार से मुक्त हैं क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही स्थित है ॥

The wise look with the same eye on a Brahman endowed with learning and culture, a cow

an elephant, dog, and a pariah too. Even here is the mortal plane conquered by those whose mind is established in unity; since the Absolute is untouched by evil and knows no distinction, hence they are established in the Eternal. (18-19)

★ ★

न प्रहृष्येत्प्रियंप्राप्य नो द्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्। स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् । स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥

और जो पुरुष प्रिय को अर्थात् जिसको लोग प्रिय समझते हैं उसको प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रिय को अर्थात् जिसको लोग अप्रिय समझते हैं उसको प्राप्त होकर उद्वेगवान न हो, ऐसा स्थिर बुद्धि संशयरहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष, सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा में एकीभाव से नित्य स्थित है। और बाहर के विषयों में अर्थात् सांसारिक भोगों में आसक्ति रहित अन्तःकरण वाला पुरुष अन्तःकरण में जो भगवत् ध्यान जनित आनन्द है, उसको प्राप्त होता है और वह पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा रूप योग में एकीभाव से स्थित हुआ अक्षय आनन्द को अनुभव करता है ॥ २०-२१ ॥

He who, with reason firm and free from doubt, rejoices not on obtaining what is pleasant and does not feel perturbed on meeting with the unpleasant, that knower of Brahma lives eternally in identity with Brahma. He whose mind remains unattached to sense-objects, derives through meditation the Sattvic joy which dwells in the mind; then that Yogi, having completely identified himself through meditation with Brahma, enjoys eternal Bliss. (20-21)

★ ★

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते । आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
शक्नोतिहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् । कामक्रोधोद्भवं बेगं स युक्तः स सुखीनरः ॥

और जो यह इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरूषों को सुख रूप भासते हैं तो भी निःसन्देह दुःख के ही हेतु हैं और आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य है, इसलिये हे अर्जुन ! बुद्धिमान, विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता । जो मनुष्य शरीर के नाश होने से पहले हो काम और क्रोध से उत्पन्न हुए बेग को सहन करने में समर्थ है अर्थात् काम, क्रोध को जिसने सदा के लिये जीत लिया है बह मनुष्य इस लोक में योगी है और बहीं सुखी है ॥ २२-२३ ॥

The pleasure which are born of sense-contacts are verily a source of suffering only (though appearing as enjoyable to worldly-minded people) They have a beginning and an end (they come and go). Arjuna, it is for this reason that a wise man does not indulge in them. He alone who is able to stand, in this very life before casting off this body, the urges of lust and anger is a Yogi; and he alone is a happy man. (22-23)

★ ★

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः । स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाण मृषयः क्षीण कल्मषाः । छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥
कामक्रोध वियुक्तानां यतीनां यत चेतसाम् । अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

जो पुरुष निश्चय करके अन्तरात्मा में ही सुख वाला है और आत्मा में ही आराम वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञान वाला है, ऐसा वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव हुआ सांख्ययोगी शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है। और नाश हो गये हैं सब पाप जिसके तथा ज्ञान करके निवृत्त हो गया है संशय जिनका और संपूर्ण भूतप्राणियों के हित में है रति जिनकी, एकाग्र हुआ है भगवान के ध्यान में चित्त जिनका, ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त परब्रह्म को प्राप्त होते हैं। और काम, क्रोध से रहित जीते हुए चित्त वाले, परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषों के लिये सब ओर से शान्त परब्रह्म परमात्मा ही प्राप्त है ॥ २४-२५-२६·

He who is happy within himself enjoys within himself the delight of the soul, and even so is illumined by the inner light (light of the soul), such a Yogi (Sankhyayogi) identified with Brahma attains Brahma, who is all Peace. The seers whose sins have been wiped out, whose doubts have been dispelled by Knowledge, whose disciplined mind is firmly established in God and who are actively engaged in the service of all beings, attain Brahma, who is all Peace. To those wise men who are free froml ust and anger, who have subdued their mind and have realized God, Brahma, the abode of eternal peace, is present all round. (24–25–26)

★ ★

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः । प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ
यतेन्द्रियमनो बुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायणः । विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥
भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम् । सुहृदंसर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

और हे अर्जुन ! बाहर के विषय भोगों को न चिन्तन करता हुआ बाहर ही त्यागकर और नेत्रों की दृष्टिको भृकुटीके बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपानवायु को सम करके जीती हुई हैं इन्द्रियां, मन और बुद्धि जिसकी, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोधसे रहित है, वह सदा मुक्त ही है। और हे अर्जुन! मेरा भक्त मेरे यज्ञ और तपों का भोगने वाला और सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत प्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित प्रेमी ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है और सच्चिदानन्दघन परिपूर्ण शान्त ब्रह्म के सिवाय उसकी दृष्टि में और कुछ भी नहीं रहता, केवल वासुदेव ही वासुदेव रह जाता है ॥ २७-२८-२९ ॥

Shutting out all thoughts of external enjoyments, with the gaze fixed on the space between the eye-brows, having regulated the Prana (outgoing) and the Apana (ingoing) breaths

flowing within the nostrils, he who has brought his senses, mind nnd intellect under control,—such a contemplative soul intent on liberation and free from desire, fear and anger, is ever liberated. Having known Me in reality as the enjoyer of all sacrifices and austerities, the supreme Lord of all the worlds, and the disinterested friend of all beings. My devotee attains peace. (27–28–29)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्याय: ।। ५ ।।



अथ षष्ठोऽध्याय:

श्री भगवानुवाच

अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य: । स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रिय: ।।
यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव । न ह्यसंन्यस्त संकल्पो योगी भवति कश्चन ।।

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! जो पुरुष कर्म के फल को न चाहता हुआ करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी और योगी है तथा केवल अग्नि को त्यागने वाला संन्यासी, योगी नहीं है तथा केवल क्रियाओं को त्यागने वाला भी संन्यासी, योगी नहीं है । इसलिये हे अर्जुन ! जिसको संन्यास कहते हैं, उसी को तू योग जान, क्योंकि संकल्पों को न त्यागने वाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता ।। १-२ ।।

Shri Bhagavan said : He who does his duty without expecting the fruit of actions is a Sannyasi (Sankhyayogi) and a Yogi (Karmayogi) both. He is no Sannyasi (renouncer) who has merely renounced the sacred fire; even so he is no Yogi, who has merely given up all activity. Arjuna, you must know that what they call Sannyasa is no other than Yoga; for none becomes a Yogi, who has not given up thoughts of the world. (1–2)

★ ★

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्मकारण मुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारण मुच्यते ॥
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनु सज्जते । सर्व संकल्प संन्यासो योगारूढस्तदोच्यते ॥

और समत्वबुद्धि रूप योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिये योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा गया है और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष के लिये सर्वसंकल्पों का अभाव ही कल्याण का हेतु कहा है । और वह पुरुष किसी काल में न तोइन्द्रियोंके भोगों में आसक्त होता है तथा न कर्मों में ही आसक्त होता है, उस सर्वसंकल्पों के त्यागी पुरुष को योगारूढ़ कहा जाता है ।। ३-४ ।।

To the contemplative soul who desires to climb to the heights of Karmayoga, disinterested action is spoken of as the stepping-stone; for the same man when he is established in Yoga, absence of all thoughts of the world is said to be the way to blessedness. When a man ceases to have any attachment either for the objects of senses or for actions, and has renounced all thoughts of the world, he is said to have climbed to the heights of Yoga. (3-4)

★ ★

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैवह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मनाजितः । अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

और यह योगारूढ़ता कल्याण में हेतु कही है, इसलिये मनुष्य को चाहिये कि, स्वयं अपना संसार समुद्र से उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुंचावे, क्योंकि यह जीवात्मा स्वयं ही तो अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है अर्थात् और कोई दूसरा शत्रु या मित्र नहीं है । वह जीवात्मा तो वह अपना ही मित्र है, जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है । जिसके द्वारा मन और इन्द्रियां सहित शरीर नहीं जीता गया है उसका वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बर्तता है ।। ५-६ ।।

One should lift oneself by one's own efforts and should not degrade oneself; for one's own self is one's friend, and one's own self is one's enemy. One's own self is the friend of the soul by whom the lower self (consisting of the mind, senses and body) has been conquered; even so the very self of him who has not conquered his lower self behaves antagonistically like an enemy. (5-6)

★ ★

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः । शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः । युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥

और हे अर्जुन ! सर्दी गर्मी और सुख दुःखादिकों में तथा मान और अपमान में जिसके अन्तःकरण की वृत्तियां अच्छी प्रकार शान्त हैं, अर्थात् विकार रहित हैं ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले

पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् प्रकार से स्थित है अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं। और ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है अन्तःकरण जिसका तथा विकार रहित है स्थिति जिसकी और अच्छी प्रकार जीती हुई है इन्द्रियां जिसकी तथा समान हैं मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण जिसके वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्‌की प्राप्तिवाला है ऐसे कहा जाता है ।।७-८।।

The Supreme Spirit is rooted in the knowledge of the self-controlled man whose mind is perfectly serene in the midst of pairs of opposites, such as cold and heat, joy and sorrow, and honour ignominy. The yogi whose mind is sated with Jnana (Knowledge of Nirguna Brahma) and Vijnana (Knowledge of manifest Divinity), who is unmoved under all circumstances, whose senses are completely mastered, and to whom earth, stone and gold are all alike, is spoken of as a God-realized soul. (7-8)

★ ★

सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थद्वेष्य बन्धुषु । साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ।।
योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः । एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।।

और जो पुरुष सुहृद् मित्र, बैरी, उदासीन मध्यस्थ द्वेषी और बन्धुगणों में तथा धर्मात्माओं में और पापियों में भी समान भाव वाला है वह अतिश्रेष्ठ है। इसलिये उचित है कि जिसका मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, ऐसा वासना रहित और संग्रह रहित योगी अकेला ही एकान्त में स्थित हुआ निरन्तर आत्मा को परमेश्वर के ध्यान में लगावे ।। ९-१० ।।

He who looks upon well-wishers and neutrals as-well-as mediators, friends and foes, relatives and objects of hatred, the virtuous and the sinful with the same eye, stande supreme. Living in seclusion all by himself, the yogi who has controlled his mind and body, and is free from desires and void of possessions, should constantly engage his mind in meditation. (9-10)

★ ★

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः । उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।।

शुद्ध भूमि में कुशा, मृगछाला और वस्त्र उपरोपरि ऐसे अपने आसन को न अति ऊंचा और न अति नीचा स्थिर स्थापन कर के। और उस आसन पर बैठकर तथा मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योग का अभ्यास करे ।। ११-१२ ।।

Having firmy placed his seat in a spot which is free from dirt and other Impurities with the sacred Kusa grass, a deerskin and a cloth spread thereon one below another (Kusa below, deerskin in the middle and cloth uppermost), neither very high nor very low. And occupying that seat, concentrating the mind and controlling the functions of the mind and senses, he should practise yoga for self-purification. (11-12 j

समंकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः । सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥
प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः । मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥

उसकी विधि इस प्रकार है कि काया, शिर और ग्रीवा को समान और अचल धारण किए दृढ़ होकर अपने नासिका के अग्रभाग को देख कर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ । और ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ भय रहित तथा अच्छी प्रकार शान्त अन्तःकरण वाला और सावधान होकर, मन को वशमें करके मेरेमें लगे हुए चित्तवाला और मेरे परायण हुआ स्थित होवे ।।१३-१४।।

Holding the trunk, head and neck straight and steady, remaining firm and fixing the gaze on the tip of his nose, without looking in other direction. Firm in the vow of complete chastity and fearless, keeping himself perfectly clam and with the mind held in restraint and fixed on Me, the vigilant yogi should sit absorbed in Me. (13–14)

★ ★

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियत मानसः । शान्ति निर्वाण परमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥
नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः । न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

इस प्रकार आत्मा को निरन्तर परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ स्वाधीन मन वाला योगी मेरे स्थिति रूप परमानन्द पराकाष्ठा वाली शान्ति को प्राप्त होता है । परन्तु हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खाने वाले को सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले को न अत्यन्त जागने वाले को ही सिद्ध होता है ।। १५-१६ ।।

Thus constantly applying his mind to Me, the yogi of disciplined mind attainds the everlasting peace, consisting of supreme bliss which abides in Me. Arjuna, this yoga is neither for him who overeats, nor for him who observes a complete fast; it is neither for him who is given to too much sleep; nor even for him who is ceaselessly awake. (15–16)

★ ★

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा ॥
यदाविनियतंचित्त मात्मन्येवाव तिष्ठते । निःस्पृहः सर्व कामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥

यह दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का तथा कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य शयन करने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है । इस प्रकार योग के अभ्यास से अत्यन्त वश में किया हुआ चित्त जिस काल में परमात्मा में ही भली प्रकार स्थित हो जाता है, उस काल में सम्पूर्ण कामनाओं से स्पृहारहित हुआ पुरुष योग युक्त ऐसा कहा जाता है ।। १७-१८ ।।

Yoga, which rids one of woe, is accomplished only by him who is regulated in diet and

recreation, regulated in performing actions, and regulated in sleep and wakefulness. When the mind which is thoroughly disciplined gets riveted on God alone, then the person who is free from yearning for all enjoyments is said to be established in yoga. (17–18)

★ ★

यथादीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमास्मृता । योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया । यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥

और जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक नहीं चलायमान होता है, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गयी है । और हे अर्जुन ! जिस अवस्था में योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमेश्वर के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को साक्षात् करता हुआ, सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही सन्तुष्ट होता है ।। १९-२० ।।

As a light does not flicker in a windless place, such is stated to be the picture of the disciplined mind of the yogi practising meditation on God. The state in which curbed through the practice of yoga, the mind becomes still, and in which, realizing God through subtle reason (purified by meditation on God) the soul rejoices only in God. (19–20)

★ ★

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् । वेत्तियत्र नचैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥
यं लब्ध्वाचापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः । यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते

तथा इन्द्रियों से अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है उसको जिस अवस्था में योगी अनुभव करता हैऔर जिस अवस्था में स्थित हुआ भगवत् स्वरूप से चलायमान नहीं होता है । और परमेश्वर की प्राप्तिरूप जिस लाभ को प्राप्त कर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत् प्राप्ति रूप अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नही होता है ।। २१ - २२ ।।

Nay, in which the soul experiences the eternal and supersensuous joy which can be apprehended only through the subtle and purified intellect, and wherein established the said yogi moves not from Truth on any account, And having obtained which he does not reckon any other gain as greater than that, and established in which he is not shaken even by the heaviest of sorrows. (21–22)

★ ★

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् । स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा
संकल्प प्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः । मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥
शनैः शनैरुपरम्येद्बुद्धया धृतिगृहीतया । आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपिचिन्तयेत् ॥

और जो दुःखरूप संसार के संयोग से रहित होता है तथा जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिये वह योग न उकताये हुये चित्त से अर्थात् तत्पर हुये चित्त से निश्चय पूर्वक करना कर्तव्य है। इसलिये मनुष्यको संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं को निःशेषता अर्थात् वासना और आसक्ति का त्याग कर और मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सब ओर से ही अच्छी प्रकार से वश में करके। क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त होवे तथा धैर्य युक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे ॥ २३ - २४ - २५ ॥

That state, called yoga, which is free from the contact of sorrow (in the form of transmigration), should be known. Nay, this yoga shonld be resolutely practised with an unwearied mind. Completely renouncing all desires arising from thoughts of the world, and fully restraining the whole pack of the senses from all sides by the mind. He should through gradual practice attain tranquillity; and fixing the mind on God through reason controlled by steadfastness, he should not think of anything else. (23-24-25)

★ ★

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चल मस्थिरम् । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥
प्रशान्त मनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् । उपैति शान्त रजसं ब्रह्मभूत मकल्मषम् ॥

परन्तु जिसका मन वश में नहीं हुआ उसको चाहिये कि यह स्थिर न रहने वाला और चञ्चल मन जिस जिस कारण से साँसारिक पदार्थों में विचरता है उस उससे रोक कर बारंबार परमात्मा में ही निरोध करे। क्योंकि जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है और जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुये योगी को अति उत्तम आनन्द प्राप्त होता है ॥ २६ - २७ ॥

Drawing back the restless and fidgety mind from all those objects after which it runs, he should repeatedly fix it on God. For to the yogi whose mind is perfectly serene who is sinless, whose passion is subdued, and who is identified with Brahma, the embodiment of Truth, Knowledge and Bliss, pupreme happiness comes as a matter of course. (26-27)

★ ★

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगत कल्मषः । सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

और वह पाप रहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूप अनन्त आनन्द को अनुभव करता है। और हे अर्जुन सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त हुये आत्मावाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण में बर्फ में जल के सदृश व्यापक देखता है अर्थात् जैसे

स्वप्न से जगा हुआ पुरुष स्वप्न के संसार को अपने अन्तर्गत संकल्प के आधार देखता है वैसे ही वह पुरुष सम्पूर्ण भूतों को अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्मा के अन्तर्गत संकल्प के आधार देखता है ॥ २८ - २९ ॥

The sinless yogi, thus uniting his self constantly with God, easily enjoys the eternal Bliss of oneness with Brahma. The yogi who is united in identity with all-pervading; infinite Consciousness, and sees unity everywhere, beholds the Self present in all beings, and all beings as assumed in the Self. (28–29)

★ ★

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन । सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

और जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्म रूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूं वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है, क्योंकि वह मेरे में एकीभाव से स्थित है । इस प्रकार जो पुरुष एकीभाव में स्थित हुआ सम्पूर्ण भूतों में आत्म रूप से स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव को भजता है, वह योगी सब प्रकार से बर्तता हुआ भी मेरे में ही बर्तता है, क्योंकि उसके अनुभव में मेरे सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं । और हे अर्जुन ! जो योगी अपनी सादृश्यता से सम्पूर्ण भूतों को सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है ॥ ३०-३१-३२ ॥

He who sees Me (the Universal Self) present in all beings, and all beings existing within Me, never loses sight of Me, and and I never lose sight of him. The yogi who is established in union with Me, and worships Me as residing in all beings (as their very Self); abides in Me, no matter what he does. Arjuna, he who looks on all as one, on the analogy of his own self, and looks upon the joy and sorrow of all with a similar eye,—such a yogi is deemed the highest of all. (30–31–32)

★ ★

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन । एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् । तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

इस प्रकार भगवान के वाक्यों को सुनकर अर्जुन बोला, हे मधुसूदन ! जो यह ध्यान योग आपने समत्व भाव से कहा है, इसकी मैं मन के चञ्चल होने से बहुत काल तक ठहरने वाली स्थिति को नहीं देखता हूँ । क्योंकि हे कृष्ण ! यह मन बड़ा चञ्चल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा

बड़ा दृढ़ और बलवान है, इसलिये उसका वश में करना मैं वायु की भांति अति दुष्कर मानता हूँ ।। ३३-३४ ।।

Arjuna, said : Krishna, owing to restlessness of mind I do not perceive the stability of this yoga in the form of equability, which You have just spoken of. For Krishna, the mind is very unsteady, turbulent, tenacious and powerful; therefore, I consider it as difficult to control as the wind. (33–34)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः । वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।।

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे महाबाहो ! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! अभ्यास अर्थात् स्थिति के लिये बारम्बार यत्न करने से और वैराग्य से वश में होता है, इसलिये इसको अवश्य वश में करना चाहिये । क्योंकि मन को वश में न करने वाले पुरुष को योग दुष्प्राप्य है, अर्थात् प्राप्त होना कठिन है और स्वाधीन मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन करने से प्राप्त होना सहज है, यह मेरा मत है ।। ३५-३६ ।।

Shri Bhagavan said : The mind is restless no doubt; and difficult to curb, Arjuna; but it can be brought under control by repeated practice (of meditation) and by the exercise of dispassion, O son of Kunti. Yoga is difficult of achievement for one whose mind is not subdued; by him; however who has the mind under control, and is ceaselessly striving, it can be easily attained through practice. Such is My conviction. (35–36)

★ ★

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलित मानसः । अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ।।
कच्चिन्नो भय विभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति । अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ।।
एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्य शेषतः । त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्यु प पद्यते ।।

इस पर अर्जुन बोला, हे कृष्ण ! योग से चलायमान हो गया है मन जिसका ऐसा शिथिल यत्न वाला श्रद्धा युक्त पुरुष योग की सिद्धि को अर्थात् भगवत् साक्षात्कारता को न प्राप्त हो कर किस गति को प्राप्त होता है ? । और हे महाबाहो ! क्या वह भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित हुआ आश्रय रहित पुरुष छिन्न-भिन्न बादल की भांति दोनों ओर से अर्थात् भगवत्प्राप्ति और सांसारिक भोगों से भ्रष्ट हुआ नष्ट तो नहीं हो जाता है ? । हे कृष्ण ! मेरे इस संशय को सम्पूर्णता

से छेदन करने के लिए आप ही योग्य हैं, क्योंकि आपके सिवाय दूसरा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना संभव नहीं है ।। ३७ - ३८ - ३९ ।।

Arjuna, said – Krishna, what becomes of the soul who, though endowed with faith, has not been able to subdue his passions, and whose mind is therefore diverted from yoga (at the time of death), and who thus fails to reach perfection in yoga (God-Realization) ? Krishna, strayed from the path leading to God-Realization and without anything to stand upon, is he not lost like the torn cloud, deprived of both God-Realization and heavenly enjoyment ? Krishna, it behoves You to slash this doubt of mine completely; for none other than You can be found, who can tear this doubt. (37–38–39)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते । न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥
प्राप्य पुण्यकृतांलोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले हे पार्थ ! उस पुरुष का न तो इस लोक में और न परलोक में ही नाश होता है, क्योंकि हे प्यारे ! कोई भी शुभ कर्म करने वाला अर्थात् भगवत् अर्थ कर्म करने वाला दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है । किन्तु वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को अर्थात् स्वर्गादिक उत्तम लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक वास करके शुद्ध आचरण वाले श्रीमान पुरुषों के घर में जन्म लेता है ।। ४०-४१ ।।

Shri Bhagavan said – Dear Arjuna, there is no fall for him either here or hereafter. For, none who strives for self-redemption (i.e., God-Realiztion) ever meets with evil destiny. He who has fallen from yoga, obtains the higher worlds (heaven etc.) to which men of meritorious deeds alone are entitled, and having resided there for countless years, takes birth in the house of pious and wealthy men. (40–41)

★ ★

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् । एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् । यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

अथवा वैराग्यवान् पुरुष उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है, परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है वह संसार में निःसन्देह अति दुर्लभ है । और वह पुरुष वहां उस पहले शरीर में साधन किये हुये बुद्धि के संयोग को अर्थात् समत्व बुद्धि योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन ! उसके प्रभाव से फिर अच्छी प्रकार भगवत्प्राप्ति के निमित्त यत्न करता है ।। ४२-४३ ।।

Or (if he is possessed of dispassion) he is born in the family of enlightened yogis; but such a birth in this world is very difficult to obtain. Arjuna, he automatically regains in that

birth the spiritual insight of his previous births; and through that he strives, harder than ever, for perfection (in the form of God-Realization). (42-43)

★ ★

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः । जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्बिषः । अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

और वह विषयों के वश में हुआ भी उस पहले के अभ्यास से ही निःसन्देह परमात्मा की ओर आकर्षित हो जाता है तथा समत्वबुद्धि रूप योग का जिज्ञासु भी वेद में कहे हुए सकाम कर्मों के फल को उल्लङ्घनकर जाता है। जब कि इस प्रकार मन्द प्रयत्न करने वाला योगी भी परमगति को प्राप्त हो जाता है तब क्या कहना है कि अनेक जन्मों से अन्तःकरण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ और अति प्रयत्न से अभ्यास करने वाला योगी सम्पूर्ण पापों से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर उस साधन के प्रभाव से परमगति को प्राप्त होता है अर्थात् परमात्मा को प्राप्त होता है ॥ ४४-४५ ॥

The other one (who takes birth in a rich family), though under the sway of his senses, feels drawn towards God by force of the habit acqired in his previous birth; nay, even the seeker of enlightenment; on yoga (in the form of even-mindedness) transcends the fruit of actions performed with some interested motive as laid down in the Vedas. The yogi, however, who diligently takes up the practice attains perfection in this very life with the help of latencies of many births, and being thoroughly purged of sin, forthwith reaches the supreme state. (44-45)

★ ★

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः । कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

क्योंकि योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और शास्त्र के ज्ञानवालों से भी श्रेष्ठ माना गया है तथा सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन ! तू योगी हो। और हे प्यारे ! सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान् योगी मेरे में लगे हुए अन्तरात्मा से मेरे को निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है ॥ ४६-४७ ॥

The yogi is superior to the ascetics; he is regarded as superior even to those versed in sacred lore. The yogi is also superior to those who perform action with some interested motive. Therefore, Arjuna, do you become a yogi. Of all yogis, again, he who devoutly worship Me with his mind focussed on Me is considered by Me to be the best yogi. (46-47)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्म संयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः । असंशयं समग्रं मां यथाज्ञास्यसि तच्छृणु ॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः । यज्ज्ञात्वा नेह भूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

उसके उपरान्त श्री कृष्ण भगवान बोले हे पार्थ ! तू मेरेमें अनन्य प्रेम से आसक्त हुए मनवाला और अनन्यभाव से मेरे परायण योग में लगा हुआ मुझको सम्पूर्ण विभूति बल ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त सब का आत्मरूप जिस प्रकार संशय रहित जानेगा उसको सुन । मैं तेरे लिए इस रहस्य सहित तत्त्वज्ञान को सम्पूर्णता से कहूंगा जिसको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है ॥ १ - २ ॥

Shri Bhagavan said – Arjuna, now listen how with the mind attached to Me (through exclusive love) and practising yoga with absolute dependence on Me, you will know Me (the Repository of all power, strength and glory and other attributes, the Universal Soul) in entirety and without any shadow of doubt. I shall unfold to you in its entirety this wisdom (Knowledge of God in His absolute formless aspect) along with the Knowledge of the qualified aspect of God (both with form and without form), having known which nothing else remains yet to be known in this world. (1-2)

★ ★

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्तितत्त्वतः ॥
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । अहंकार इति यं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् । जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

परन्तु हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मेरे को तत्त्व से जानता है अर्थात् यथार्थ मर्म से जानता है । और हे अर्जुन ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार से विभिक्त हुई मेरी प्रकृति है । सो यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा है अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरी को जीवरूप परा अर्थात् चेतन-प्रकृति जान कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है ॥ ३–४–५ ॥

Hardly one among thousands of men strives to realize Me; of those striving yogis, again, some rare one (devoting himself exclusively to Me) knows Me in reality. Earth, water, fire,

air, ether, mind, reason and also ego; these constitute My nature eightfold divided. This indeed is My lower (material) nature; the other than this, by which the whole universe is sustained, know it to be My higher (or spiritual) nature in the form of Jiva (the life-principle), O Arjuna. (3-4-5 j

★ ★

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

और हे अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण प्राणी इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पत्तिवाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत का उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूं अर्थात् सम्पूर्ण जगत का मूल कारण हूं। इसलिये हे धनंजय ! मेरे सिवाय किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है यह सम्पूर्ण जगत सूत्रों में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गुंथा हुआ है ॥ ६ - ७ ॥

Arjuna, know that all beings have evolved from this twofold Prakriti; and that I am the source of the entire creation, and into Me again it disappears. There is nothing else besides Me, Arjuna. Like clusters of yarn-beads formed by knots on a thread, all this is threaded on Me. (6-7)

★ ★

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशि सूर्ययोः । प्रणवः सर्व वेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ । जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विसु ॥

जैसे कि हे अर्जुन ! जल में मैं रस हूँ तथा चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ और सम्पूर्ण वेदों में ओंकार हूँ तथा आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ। तथा पृथिवी में पवित्र गन्ध और अग्नि में तेज हूँ और सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन हूँ अर्थात् जिससे वे जीते हैं, वह मैं हूँ और तपस्वियों में तप हूँ ॥ ८-९ ॥

Arjuna, I am the sapidity in water and the light of the moon and the sun; I am the sacred syllable OM in all the Vedas, the sound in ether, and the manliness in men. I am the pure odour (the subtle principle of odour) in earth and the brilliance in fire; nay, I am the life in all beings and the austerity in men of askesis. (8-9)

★ ★

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् । बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥
बलं बलवतां चाहं कामराग विवर्जितम् । धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥

तथा हे अर्जुन ! तू सम्पूर्ण भूतों का सनातन कारण मेरे को ही जान, मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ। और हे भरतश्रेष्ठ ! मैं बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम हूँ ॥ १०-११ ॥

Arjuna, know Me the eternal seed of all beings. I am the intelligence of the intelligent; the glory of the glorious am I. Arjuna, of the mighty I am the might, free from passion and desire; in beings I am the sexual desire not conflicting with virtue or scriptural injunctions.

★ ★

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये । मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् । मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

तथा और भी जो सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से होने वाले भाव हैं, उन सबको तू मेरे से ही होनेवाले हैं ऐसा जान, परन्तु वास्तव में उनमें मैं और वे मेरे में नहीं हैं। किन्तु गुणों के कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस इन तीनों प्रकार के भावों से अर्थात् राग-द्वेषादि विकारों से और सम्पूर्ण विषयों से यह सब संसार मोहित हो रहा है, इसलिए इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को तत्त्व से नहीं जानता ॥ १२-१३ ॥

Whatever other entities there are, born of Sattva (the quality of goodness), and those that are born of Rajas (the principle of activity) and Tamas (the principle of inertia), know them all as evolved from Me alone. In reality, however, neither do I exist in them, nor they in Me. The whole of this creation is deluded by these objects evolved from the three modes of Prakriti – Sattva, Rajas and Tamas; that is why the world fails to recognize Me, standing apart from these and imperishable. (12-13)

★ ★

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो पुरुष मेरे को ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया का उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं। ऐसा सुगम उपाय होने पर भी माया द्वारा हरे हुए ज्ञानवाले और आसुरी स्वभाव को धारण किये हुए तथा मनुष्यों में नीच और दूषित कर्म करने वाले मूढ़लोग तो फिर भी मेरे को नहीं भजते हैं ॥ १४-१५ ॥

For this most wonderful Maya (veil) of Mine, consisting of the three Gunas (modes of Nature), is extremely difficult to break through; those, however, who constantly adore Me alone are able to cross it. Those whose wisdom has been carried away by Maya, and who have embraced the demoniac nature, such foolish and vile men of evil deeds do not adore Me. (14-15)

★ ★

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स मम प्रियः ॥

और हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्मवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् निष्कामी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मेरे को भजते हैं। उनमें भी नित्य मेरे में एकीभाव से स्थित हुआ अनन्य प्रेम भक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मेरे को तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मेरे को अत्यन्त प्रिय है ॥ १६-१७ ॥

Four types of devotees of noble deeds worship Me, Arjuna, the seeker after wordly possessions, the afflicted, the seeker for knowledge, and tha man of wisdom, O best of Bharatas, Of these the best is the man of wisdom, ever established in identity with Me and possessed of exclusive devotion. For I am extremely dear to the wise man (who knows Me in reality), and he is extremely dear to Me. (16-17)

★ ★

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् । आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमांगतिम्
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

यद्यपि यह सब ही उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह स्थिरबुद्धि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति स्वरूप मेरे में ही अच्छी प्रकार स्थित है। और जो बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है अर्थात् वासुदेव के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं, इस प्रकार मेरे को भजता है वह महात्मा अति दुर्लभ है ॥ १८-१९ ॥

Indeed all these are noble, but the men of wisdom is My very self; such is My view. For such a devotee, who has his mind and and intellect merged in Me, is firmly established in Me alone, the highest goal. In the very last of all births the enlightened soul worships Me, realizing that all this is God. Such a great soul is very rare. 18-19

★ ★

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः । तं तं नियममास्थाय प्रकृत्यानियताः स्वया ॥
यो यो यां यां तनुंभक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेवविदधाम्यहम् ॥

और हे अर्जुन ! जो विषयासक्त पुरुष हैं वे तो अपने स्वभाव से प्रेरे हुए तथा उन - उन भोगों की कामना द्वारा ज्ञान से भ्रष्ट हुए उस - उस नियम को धारण करके अर्थात् जिस देवता की पूजा के लिए जो - जो नियम लोक में प्रसिद्ध है उस - उस नियम को धारण करके, अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात् पूजते हैं। जो-जो सकामी भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्तकी मैं उस ही देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूँ ॥२०-२१॥

Those whose wisdom has been carried away by various desires, being prompted by their own nature, worship other deities adopting rules relating to each. Whatever celestial form a

devotee (craving for some worldly objcet) chooses to worship with reverence, I stabilize the faith of that particular devotee in that very form. (20-21)

★ ★

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधन मीहते । लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् । देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

तथा वह पुरुष उस श्रद्धासे युक्त हुआ उस देवता के पूजन की चेष्टा करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को निःसन्देह प्राप्त होता है। परन्तु इन अल्पबुद्धि वालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्त में वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं ॥ २२-२३ ॥

Endowed with such faith he worships that particular deity and obtains through him without doubt his desired enjoyments as ordained by Myself. The fruit gained by these people of small understanding, however, is perishable. The worshippers of gods attain the gods; whereas My devotees, howsoever they worship Me, eventually come to Me and Me alone. (22-23)

★ ★

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते माम बुद्धयः । परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः । मूढोऽयंनाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

ऐसा होने पर भी सब मनुष्य मेरा भजन नहीं करते, इसका कारण यह है कि बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अर्थात् जिससे उत्तम और कुछ भी नहीं ऐसे अविनाशी परम भाव को अर्थात् अजन्मा, अविनाशी हुआ भी अपनी माया से प्रकट होता हूँ, ऐसे प्रभाव को तत्त्व से न जानते हुए मन, इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मनुष्य की भांति जन्मकर, व्यक्तिभाव को प्राप्त हुआ मानते हैं। तथा अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ, इसलिए यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्मरहित, अविनाशी परमात्मा को तत्त्व से नहीं जानता है अर्थात् मेरे को जन्मने, मरने वाला समझता है ॥ २४-२५ ॥

Not knowing My unsurpassable and undecaying supreme nature, the ignorant believe Me, the supreme Spirit beyond the reach of mind and senses, the embodiment of Truth, Knowledge and Bliss, to have assumed a finite form through birth (as an ordinary human being). Veiled by My Yogamaya (divine potency); I am not manifest to all. Hence these ignorant folk fail to recognize Me, the unborn and imperishable Supreme Deity (i.e., consider Me as subject to birth and death). (24-25)

★ ★

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन । भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥
इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत । सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥

और हे अर्जुन ! पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूँ, परन्तु मेरे को कोई भी श्रद्धा, भक्ति रहित पुरुष नहीं जानता है । क्योंकि हे भरतवंशी अर्जुन ! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोह से सम्पूर्ण प्राणी अति अज्ञानता को प्राप्त हो रहे हैं ॥ २६–२७ ॥

Arjuna, I know all beings past as well as present, nay, even those that are yet to come. but none (devoid of faith and reverence) knows Me. O valiant Arjuna, through delusion in the shape of pairs of opposites [such as pleasure and pain etc.], born of desire and hatred, all living creatures in this world are falling a prey to infatuation. [26–27]

★ ★

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्य कर्मणाम् । ते द्वन्द्वमोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये । ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥
साधिभूताधिदैवं मां साधि यज्ञं च ये विदुः । प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्त चेतसः ॥

परन्तु निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे रागद्वेषादि द्वन्द्वरूप मोह से मुक्त हुए और दृढ़ निश्चय वाले पुरुष मेरे को सब प्रकार से भजते हैं । और जो मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्म को तथा सम्पूर्ण अध्यात्म को और सम्पूर्ण कर्म को जानते हैं । और जो पुरुष अधिभूत और अधिदैव के सहित तथा अधियज्ञ के सहित सबका आत्मरूप मेरे को जानते हैं अर्थात् जैसे भाप, बादल, पानी और बर्फ यह सभी जल स्वरूप हैं वैसे ही अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ आदि सब कुछ वासुदेव स्वरूप हैं, ऐसे जो जानते हैं, वे युक्तचित्त वाले पुरुष अन्तकाल में भी मुझको ही जानते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं ॥ २८–२९–३० ॥

But those men of virtuous deeds whose sins have come to an end, being freed from delusion in the shape of pairs of opposites [born of attraction and repulsion], worship Me with a firm resolve in every way. They who, having taken refuge in Me, strive for deliverance from old age and death know Brahma [the Absolute], the whole Adhyatma [the totality of Jivas or embodied souls], and the entire field of Karma [action] as well as My integral being, comprising Adhibhuta [the field of Matter], Adhidaiva [Brahma] and Adhiyajna [the unmanifest Divinity dwelling in the heart of all beings as their witness]. And they who, possessed of a steadfast mind, know thus even at the hour of death, they too know Me alone. [28-29-30]

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

卐

अथाष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम । अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन । प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥

इस प्रकार भगवान् के वचनों न समझ कर अर्जुन बोला, हे पुरुषोत्तम ! जिसका आपने वर्णन किया वह ब्रह्म क्या है ? और अध्यात्म क्या है ? तथा कर्म क्या है ? और अधिभूत नाम से क्या कहा गया है ? तथा अधिदैव नाम से क्या कहा जाता है ? । और हे मधुसूदन ! यहां अधियज्ञ कौन है ? और वह इस शरीर में कैसे है ? और युक्तचित्त वाले पुरुषों द्वारा अन्त समय में आप किस प्रकार जानने में आते हो ? ॥ १-२ ॥

Arjuna said : Krishna, what is that Brahma (Absolute), what is Adhyatma (Spirit), and what is Karma (Action) ? What is called Adhibhuta (Matter) and what is termed as Adhidaiva (divine intelligence) ? Krishan, who is Adhiyajna here and how does he dwell in the body ? And how are You to be realized at the time of death by those of steadfast mind? (1–2)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते । भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् । अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥

इस प्रकार अर्जुन के प्रश्न करने श्री कृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन ! परम अक्षर अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सच्चिदानन्दघन परमात्मा तो ब्रह्म है और अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा अध्यात्म नाम से कहा जाता है तथा भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला शास्त्र विहित यज्ञ, दान और होम आदि के निमित्त जो द्रव्यादिकों का त्याग है वह कर्म नाम से कहा गया है । तथा उत्पत्ति, विनाश धर्मवाले सब पदार्थ अधिभूत हैं और हिरण्मय पुरुष अधिदेव है और हे देह धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! इस शरीर में मैं वासुदेव ही विष्णु रूप से अधियज्ञ हूँ ॥ ३-४ ॥

Shri Bhagavan said : The supreme Indestructible is Brahma; one's ownself (the individual soul) is called Adhyatma; and the discharge of spirits, (Visarga), which brings forth the existence of beings, is called Karma (Action). All perishable objects are Adhibhuta; the shining Purusa (Brahma) is Adhidaiva; and in this body I Myself, dwelling as the inner witness, am Adhiyajna, O Arjuna ! (3–4)

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् । यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः
यं यं वापिस्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

और जो पुरुष अन्तकाल में मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । कारण कि हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्त काल में जिस जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, उस-उस को ही प्राप्त होता है, परन्तु सदा उस ही भाव को चिन्तन करता हुआ, क्योंकि सदा जिस भाव का चिन्तन करता है, अन्तकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है ॥ ५-६ ॥

He who departs from the body, thinking of Me alone even at the time of death, attains My state; there is no doubt about it. Arjuna, thinking of whatever entity one leaves the body at the time of death, that and that alone one attains, being ever absorbed in its thought. (5-6)

★　　★

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥
अभ्यासयोग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना । परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

इसलिए हे अर्जुन ! तू सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर, इस प्रकार मेरे में अर्पण किये हुए मन, बुद्धि से युक्त हुआ निःसन्देह मेरे को ही प्राप्त होगा । और हे पार्थ ! यह नियम है, कि परमेश्वर के ध्यान में अभ्यास रूप योग से युक्त अन्य तरफ जाने वाले चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम प्रकाश स्वरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है ॥ ७-८ ॥

Therefore, Arjuna, think of Me at all times and fight. With mind and reason thus set on Me, you will doubtless come to Me. Arjuna, he who with his mind disciplined through Yoga in the form of practice of meditation and thinking of nothing else, is constantly engaged in contemplation of God attains the supremely effulgent divine Purusa (God). (7-8)

★　　★

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥

इससे जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता सूक्ष्म, से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण पोषण करने वाले अचिन्त्य स्वरूप सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाश रूप अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा को स्मरण करता है ॥ ९ ॥

He who contemplates on the all-wise, ageless Being, the Ruler of all, subtler than the subtle, the universal sustainer, possessing a Form beyond human conception; refulgent like the sun and far beyond the darkness of ignorance. (9)

★　　★

प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

वह भक्ति युक्त पुरुष अन्तकाल में भी योग वल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है ॥ १० ॥

Having by the power of Yoga firmly held the life-breath in the space between the two eyebrows even at the time of death, and then contemplating on God with a steadfast mind, full of devotion, he reaches verily that supreme divine Purusa (God). (10)

★ ★

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेणप्रवक्ष्ये ॥

और हे अर्जुन ! वेद के जानने वाले विद्वान जिस सच्चिदानन्दघन रूप परमपद को ॐकार नाम से कहते हैं और आसक्ति रहित यत्न शील महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं तथा जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस परमपद को तेरे लिये संक्षेपसे कहूँगा ॥११॥

I shall tell you briefly about that supreme goal (viz., God who is an embodiment of Truth, Knowledge and Bliss), which the knowers of the Veda term as the Indestructible; which striving recluses free from passion enter, and desiring which the celibates practise Brahmacharya. (11)

★ ★

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च । मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

हे अर्जुन ! सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटा कर तथा मन को हृद्देश में स्थित करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके योग धारणा में स्थित हुआ । जो पुरुष ॐ ऐसे इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ-स्वरूप मेरे को चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है ॥ १२-१३ ॥

Having closed all the doors of the senses, and firmly holding the mind in the cavity of the heart, and then fixing the life-breath in the head, and thus remainining steadfast in Yogic concentration on God, he who leaves the body and departs uttering the one indestructible Brahma, OM, and dwelling on Me in My absolute aspect, reaches the supreme goal. (12-13)

★ ★

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः । तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्ययोगिनः ॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धि परमां गताः ॥

ओर हे अर्जुन ! जो पुरुष मेरे में अनन्य चित्त से स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरे को स्मरण करता है उस निरन्तर मेरे में युक्त हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात सहज ही प्राप्त हो जाता हूं । और वे परम सिद्धि को प्राप्त हुए महात्माजन मेरे को प्राप्त होकर दुःख के स्थान रूप क्षण भंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १४-१५ ॥

Arjuna, whosoever always and constantly thinks of Me with undivided mind, to that Yogi ever absorebed in Me I am easily attainable. Great souls, who have attained the highest perfection, having come to Me, are no more subjected to rebirth, which is the abode of sorrow, and transient by nature. (14-15)

★ ★

आब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन । मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥
सहस्रयुग पर्यन्त महर्यद ब्रह्मणो विदुः । रात्रि युग सहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥

क्योंकि हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनावर्ती स्वभाव वाले अर्थात् जिनको प्राप्त होकर पीछे संसार में आना पड़े ऐसे हैं परन्तु हे कुन्ती पुत्र ! मेरे को प्राप्त होकर उसका पुनर्जन्म नहीं होता है क्योंकि मैं कालातीत हूँ और यह सब ब्रह्मादिकों के लोक अवधि होने से अनित्य हैं । हे अर्जुन ! ब्रह्मा का जो एक दिन है उसको हजार चौकड़ी युग तक अवधि वाला और रात्रि को भी हजार चौकड़ी युग तक अवधि वाली जो पुरुष तत्त्व से जानते हैं अर्थात अवधि वाला होने से ब्रह्मलोक को भी अनित्य जानते हैं वे योगीजन काल के तत्त्व को जानने वाले हैं ॥ १६-१७ ॥

Arjuna, all the worlds from Brahmaloka (the heavenly realm of the Creator, Brahma) downwards are liable to appear and reappear. But, O son of Kunti, on attaining Me there is no rebirth. (For while I am beyond Time, regions like Brahmaloka, being conditioned by time, are transitory.) Those Yogis who know from realization Brahma's day as covering a thousand Mahayugas, and so his night as extending to another thousand Mahayugas, know the reality about Time. (16-17)

★ ★

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वा प्रभवन्त्य हरागमे । रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके ॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते । रात्र्यागमेवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥

इसलिये वे यह भी जानते हैं, कि सम्पूर्ण दृश्य मात्र भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेश काल में अव्यक्त से अर्थात् ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेश काल में

उस अव्यक्त नामक ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में ही लय होते हैं। और वह ही यह भूत समुदाय उत्पन्न हो होकर प्रकृति के वश में हुआ रात्री के प्रवेश काल में लय होता है और दिन के प्रवेश काल में फिर उत्पन्न होता है, हे अर्जुन ! इस प्रकार ब्रह्मा के एक सौ वर्ष पूरे होने से अपने लोक सहित शान्त हो जाता है ॥ १८-१९ ॥

All embodied beings emanate from the Unmanifest (i.e., Brahma's subtle body) at the coming of the cosmic day; at the cosmic nightfall they merge into the same subtle body of Brhama, known as the Unmanifest. Arjuna, this multitude of beings being born again and again, is dissolved under compulsion of its nature at the coming of the cosmic night, and rises again at the commencement of the cosmic day. (18-19)

★ ★

परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो व्यक्तो व्यक्तात्सनातनः । यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥
अव्यक्तोक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् । यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

परन्तु उस अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्त भाव है वह सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है । और जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है उस ही अक्षर नामक अव्यक्तभाव को परमगति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्तभाव को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते हैं वह मेरा परमधाम है २० - २१

For beyond even this Unmanifest, there is yet another unmanifest Existence, that Supreme Divine Person, who does not perish even thongh all beings perish. The same Unmanifest which has been spoken of as the Indestructible is also called the supreme Goal; that again is My supreme Abode, attaining which they return not to this mortal world. (20-21)

★ ★

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया । यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥
यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः । प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥

और हे पार्थ ! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सर्वभूत हैं और जिस सच्चिदान्दघन परमात्मा से यह सब जगत् परिपूर्ण है वह सनातन अव्यक्त परमपुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है । और हे अर्जुन ! जिस काल में शरीर त्याग गए हुए योगीजन पीछा न आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं उस काल को अर्थात् मार्ग को कहूँगा ॥ २२ - २३ ॥

Arjuna, that eternal unmanifest supreme Purusa in whom all beings reside and by whom all this is pervaded, is attainable only though exclusive Devotion. Arjuna I shall now tell you the time (path) departing when Yogis do not return, and also the time (path) departing when they do return. (22-23)

★ ★

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् । तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥
धूमोरात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् । तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥

उन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है और दिन का अभिमानी देवता है तथा शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है, और उत्तरायण के छः महिनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता अर्थात् परमेश्वर की उपासना से परमेश्वर को परोक्षभाव से जानने वाले योगीजन, उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गये हुए ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। तथा जिस मार्ग में धूमाभिमानी देवता है और रात्रि अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छः महीनों का अभिमानी देवता है उस मार्ग में मर कर गया हुआ सकाम कर्मयोगी उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गया हुआ चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल भोगकर पीछे आता है ॥ २४-२५ ॥

(Of the two paths) the one is that in which are stationed the all effulgent fire-god and the deities persiding over daylight, the bright fortnight, and the six months of the northward course of the sun respectively; proceeding along it after death Yogis, who have known Brahma, being successively led by the above gods, finally reach Brahma. The other path is that wherein are stationed the gods presiding over smoke, night, the dark fortnight, and the six months of the southward course of the sun; the Yogi (devoted to action with and interested motive) taking to this path after death is led by the above gods, one after another, and attaining the lustre of the moon (and enjoying the fruit of his meritorious deeds in heaven) returns to this mortal world. [24-25]

★ ★

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते । एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥
नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन । तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥

क्योंकि जगत के यह दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये हैं इनमें एक के द्वारा गया हुआ पीछा न आने वाली परम गति को प्राप्त होता है और दूसरे द्वारा गया हुआ पीछे आता है अर्थात् जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है। और हे पार्थ ! इस प्रकार दोनो मार्गों को तत्त्व से जानता हुआ कोई भी योगी मोहित नहीं होता है, अर्थात् फिर वह निष्कामभाव से ही साधन करता है, कामनाओं में नहीं फंसता, इस कारण हे अर्जुन ! तू सब काल में समत्वबुद्धिरूप योग से युक्त हो अर्थात् निरन्तर मेरी प्राप्ति के लिए साधन करने वाला हो ॥ २६-२७ ॥

For these two paths of the world, the bright and the dark, are considered to be eternal. Proceeding by one of them, one reaches the supreme state from which there is no return; and proceeding by the other, one returns to the mortal world, i.e., becomes subject to birth

and death once more. Knowing thus the secret of these two paths, O son of Kunti, no Yogi gets deluded. Thorefore, Arjuna, at all times be steadfast in Yoga in the form of equanimity (i.e., strive constantly for My realization). (26–27)

★ ★

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥

क्योंकि योगी पुरुष इस रहस्य को तत्त्व से जान कर वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ तप और दानादिकों के करने में जो पुण्य फल कहा गया है, उस सब को निःसन्देह उल्लङ्घन कर जाता है और सनातन परमपद को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

The Yogi, realizing this profound truth, doubtless transcends all the rewards, ascribed in the scriptures, to the study of the Vedas, as well as to the performance of sacrifices, austerities and charities, and attains the beginningless supreme state. (28)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे । ज्ञानंविज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् । प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान बोले हे अर्जुन ! तुझ दोष दृष्टि रहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय ज्ञान को रहस्य के सहित कहूँगा, कि जिसको जानकर तू दुःख रूप संसार से मुक्त हो जायेगा । यह ज्ञान सब विद्याओं का राजा तथा सब गोपनीयों का भी राजा एवं अति पवित्र, उत्तम प्रत्यक्ष फल वाला और धर्मयुक्त है, साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है ॥ १-२ ॥

Shri Bhagavan said : To you, who are devoid of the carping spirit, I shall now unfold the most secret knowledge of Nirguna Brahma along with the knowledge of manifest Divinity, knowing which you shall be free from the evil of worldly existence. This knowledge (of both

the Nirguna and the saguna aspects of Divinity) is a sovereign science, a sovereign secret, supremely holy, most excellent, directly enjoyable, attended with virtue, very easy to practise and imperishable. (1-2)

★ ★

अश्रद्दधानाः पुरुषाः धर्मस्यास्य परंतप । अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥
मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्त मूर्तिना । मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

और हे परंतप ! इस तत्व ज्ञान रूप धर्म में श्रद्धा रहित पुरुष मेरे को न प्राप्त होकर मृत्यु रूप संसार चक्र में भ्रमण करते हैं। और हे अर्जुन! मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा से यह सब जगत जल से बर्फ के सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार पर स्थित हैं इसलिए वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ ॥ ३ - ४ ॥

Arjuna, people having no faith in this Dharma, failing to reach Me, revolve in the path of the world of death. The whole of this universe is permeated by Me as unmanifest Divinity, and all beings rest on the idea within Me. Therefore, really speaking I an not present in them. (3-4)

★ ★

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् । भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥
यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्र गो महान् । तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानित्युपधारय ॥

और वे सब भूत मेरे में स्थित नहीं हैं किन्तु मेरी योगमाया और प्रभाव को देख कि भूतों का धारण पोषण करने वाला भी मेरा आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं है । क्यों कि जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ वायु सदा ही आकाश में स्थित है वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पत्ति वाले होने से सम्पूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं, ऐसा जान ॥ ५ - ६ ॥

Nay, all those beings abide not in me; but behold the wonderful power of My divine Yoga; though the Sustainer and Creator of beings, My Self in reality dwells not in those beings. Just as the extensive air, which is moving everywhere, (being born of ether) ever remains in ether, likewise know that all beings (who have originated from My thought) abide in Me. (5-6)

★ ★

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः । भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥

और हे अर्जुन कल्प के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लय होते हैं और कल्प के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ। कैसे कि अपनी त्रिगुणमयी माया को

अङ्गीकार करके स्वभाव के वश से परतन्त्र हुए इस संम्पूर्ण भूत समुदाय को बारम्बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ ।। ७-८ ।।

Arjuna, during the Final Dissolution all beings enter My Prakriti (the prime Cause), and at the beginning of creation, I send them forth again. Wielding My Nature I release, again and again (according to their respective Karmas) all this multitude of beings subject to the influence of their own nature. (7-8)

★ ★

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय । उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।।
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् । हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।

हे अर्जुन ! उन कर्मों में आसक्ति रहित और उदासीन के सदृश स्थित हुए, मुझ परमात्मा को वे कर्म नहीं बांधते हैं। और हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से यह मेरी माया चराचर सहित सब जगत को रचती है और इस ऊपर कहे हुए हेतु से ही यह संसार आवागमन रूप चक्र में घूमता है ।। ९-१० ।।

Arjuna, those actions, however, do not bind Me, unattached as I am to such actions and standing apart as it were. Arjuna, with Me as the supervisor, Nature brings forth the whole creation, consisting of both sentient and insentient beings; it is due to this cause that the wheel of Samsara is going round. (9-10)

★ ★

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् । परंभावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।।
मोघाशामोघ कर्माणो मोघज्ञानाविचेतसः । राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।।

ऐसा होने पर भी संम्पूर्ण भूतों के महान ईश्वर रूप मेरे परमभाव को न जानने वाले मूढ़-लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योग-माया से संसार के उद्धार के लिए मनुष्य रूप में विचरते हुए को साधारण मनुष्य मानते हैं। जो कि वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान वाले अज्ञानीजन राक्षसों के और असुरों के जैसे मोहित करने वाले तामसी स्वभावों को ही धारण किये हुए हैं ।। ११-१२ ।।

Fools, not knowing My supreme nature, think low of Me, the Overlord of the entire creation. who have put on the human semblance. (That is to say, they take Me, who have appeared in human garb through My Yogamaya for the deliverance of the world, for an ordinary mortal.) Those bewildered persons with vain hopes, futile actions and fruitless knowledge have embraced a fiendish, demoniacal and delusive nature. (11-12)

★ ★

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः । भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः । नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

परन्तु हे कुन्तीपुत्र ! दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन हैं, वे तो मेरे को सब भूतों का सनातन कारण और नाश रहित अक्षर स्वरूप जान कर अनन्य मन से युक्त हुए निरन्तर भजते हैं। और वे दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए और मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करते हुए और मेरे को बारम्बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यान में युक्त हुए, अनन्य भक्ति से मुझे उपासते हैं ॥ १३-१४ ॥

On the other hand, Arjuna, great souls who have embraced the divine nature, knowing Me as the prime source of all lives and the imperishable eternal, worship Me constantly with none else in mind Constantly chanting My names and glories and striving for My realization, and bowing again and again to Me, those devotees of firm resolve, ever united with Me through meditation, worship Me with single-minded devotion. (13-14)

★ ★

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते । एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् । मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥

उनमें कोई तो मुझ विराट स्वरूप परमात्मा को ज्ञान यज्ञ के द्वारा पूजन करते हुए एक त्वभाव से अर्थात् जो कुछ है सब वासुदेव ही है इस भाव से उपासते हैं और दूसरे पृथकत्वभाव से अर्थात् स्वामी सेवक भाव से और कोई-कोई बहुत प्रकार से भी उपासते हैं। क्योंकि क्रतु अर्थात् श्रौतकर्म मैं हूँ यज्ञ अर्थात् पञ्चमहायज्ञादि स्मार्त कर्म मैं हूं, स्वधा अर्थात् पितरों के निमित्त दिया जाने वाला अन्न मैं हूँ, औषधि अर्थात् सब वनस्पतियां मैं हूँ, एवं मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूं ॥ १५-१६ ॥

Others (who follow the path of Knowledge) betake themselves to Me through their offering of Knowledge, worshipping Me (in My absolute, formless aspect) as one with themselves; while still others worship Me in My Universal Form in many ways, taking Me to be diverse in diverse celestial forms. I am the Vedic ritual, I am the sacrifice, I am the offering to the departed; I am the herbage and foodgrains; I am the sacred formula, I am the clarified butter, I am the sacred fire, and I am verily the act of offering oblations into the fire. (15-16)

★ ★

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः । वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत । प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च । अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥

और हे अर्जुन ! मैं ही, इस संम्पूर्ण जगत का धाता अर्थातु धारण पोषण करने वाला एवं

कर्मों के फल को देने वाला तथा पिता माता और पितामह हूँ और जानने योग्य पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। और हे अर्जुन ! प्राप्त होने योग्य तथा भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, शुभाशुभ का देखने वाला, सबका वास स्थान और शरण लेने योग्य तथा प्रति उपकार न चाहकर हित करने वाला और उत्पति प्रलय रूप तथा सबका आधार निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। और मैं ही सूर्य रूप हुआ तपता हूं तथा वर्षा को आकर्षण करता हूँ और वर्षाता हूँ और हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत् भी सब कुछ मैं ही हूँ ॥ १७-१८-१९ ॥

I am the sustainer and ruler of this universe, its father, mother and grandfather, the one worth knowing, the purifier, the sacred syllable OM, and the three Vedas – Rk, Yajus and Sama I am the supreme goal, supporter, lord, witness, abode, refuge, well-wisher seeking no return, origin and end, resting-place, store-house (to which all beings return at the time of universal destruction), and imperishable seed. I radiate heat as the sun, and hold back as well as send forth showers, Arjuna. I am immortality as well as death; even so I am being and non-being both. (17-18-19)

★ ★

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥

परन्तु जो तीनों वेदों में विधान किये हुए सकाम कर्मों को करने वाले और सोमरस को पीने वाले एवं पापों से पवित्र हुए पुरुष मेरे को यज्ञों के द्वारा पूज कर स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्यों के फल रूप इन्द्र लोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं ॥ २० ॥

Those who perform action with some interested motive as laid down in these three Vedas and drink the sap of the Soma plant, and have thus been purged of sin, worshipping Me through sacrifices, seek access to heaven; attaining Indra's paradise as the result of their virtuous deeds, they enjoy the celestial pleasures of gods in heaven. (20)

★ ★

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयी धर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

और वे उस विशाल स्वर्ग लोक को भोगकर, पुण्य क्षीण होने पर, मृत्यु लोक को प्राप्त होते हैं, इस प्रकार स्वर्ग के साधन रूप तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म के शरण हुए और भोगों की कामना वाले पुरुष बारम्बार आवागमन को प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्य क्षीण होने से मृत्यु लोक में आते हैं ॥ २१ ॥

Having enjoyed the extensive heaven-world, they return to this world of mortals on the stock of their merits being exhausted. Thus devoted to the ritual with interested motive recommended by the three Vedas (as the means of attaining heavenly bliss), and seeking worldly enjoyments, they repeatedly come and go (i.e., ascend to heaven by virtue of their merits and return to earth when their fruit has been enjoyed). (21)

★ ★

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः । तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्य विधिपूर्वकम् ॥

और जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थित पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं कर देता हूँ। और हे अर्जुन ! यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए सकामी भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं वे भी मेरे को ही पूजते हैं, किन्तु उनका वह पूजना अविधि पूर्वक अर्थात् अज्ञान पूर्वक है ॥ २२-२३ ॥

The devotees, however, who loving no one eles constantly think of Me and worship Me in a disinterested spirit, to those ever united in thought with Me, I bring full security and personally attend to their needs. Arjuna, even those devotees who, endowed with faith, worship other gods (with some interested motive) worship Me alone, though with a mistaken approach. (22-23)

★ ★

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च । न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥
यान्तिदेवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः । भूतानियान्ति भूतेज्या यान्तिमद्याजिनोऽपिमाम्॥

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ, परन्तु वे मुझ अधियज्ञ रूप परमेश्वर को तत्त्व से नहीं जानते हैं, इसी से गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं। कारण, यह नियम है कि देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं इसीलिये मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २४-२५ ॥

For I am the enjoyer and also the lord of all sacrifices; but they know Me not in reality (as the supreme Deity), hence they fall (i.e., return to life on earth). Those who are vowed to gods go to the gods; those who are vowed to the manes; reach the manes, those who adore the spirits reach the spirits and those who worship Me come to Me alone. (That is why My devotees are no longer subject to birth and death). (24-25)

★ ★

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासियत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

तथा हे अर्जुन ! मेरे पूजन में यह सुगमता भी है कि पत्र पुष्प, फल जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेम पूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र पुष्पादिक मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ । इसलिये हे अर्जुन ! तू जो कुछ कर्म करता है जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्मा चरण रूप तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर ॥ २६-२७ ॥

Whosoever offers to Me with love a leaf, a flower, a fruit or even water, I appear in person before that disinterested devotee of sinless mind, and delightfully partake of that article offered by him with love. Arjuna, whatever you do, whatever you eat, whatever you offer as oblation to the sacred fire, whatever you bestow as a gift, whatever you do by way of penance, offer it all to Me. (26-27)

★ ★

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः । संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः । ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्

इस प्रकार कर्मों को मेरे अर्पण कर संन्यास योग से युक्त हुए मन वाला तू शुभाशुभ फलस्वरूप कर्म बन्धन से मुक्त हो जायगा और उन से मुक्त हुआ मेरे को ही प्राप्त होवेगा । यद्यपि मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूं न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है परन्तु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे में और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ ॥ २८-२९ ॥

Will your mind thus established in the Yoga of renunciation (offering of all actions to Me), you will be freed from the bonds of Karma in the shape of good and evil consequences; and freed from them, you will attain Me. I am equally present in all beings; there is none hateful or dear to Me. They, however who devoutly worship Me abide in Me; and I too stand revealed in them. (28-29)

★ ★

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति । कौन्तेयप्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

तथा और भी मेरी भक्ति का प्रभाव सुन, यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को निरन्तर भजता है वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है अर्थात् उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है । इसलिये वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है, और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है, हे अर्जुन ! तू निश्चय पूर्वक सत्यजान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता ॥ ३०-३१ ॥

Even if the vilest sinner worships M with exclusive devotion, he should be accounted a saint; for he has rightly resolved. (He is positive in his belief that there is nothing like devoted worship of God.) Speedily he becomes virtuous and secures lasting peace. Know it for certain, Arjuna, tha My devotee never falls. (30-31)

★ ★

मां हि पार्थव्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपियान्ति परांगतिम्
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा । अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्वमाम् ॥
मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

क्योंकि हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पाप योनि वाले भी जो कोई होवे वे भी मेरे शरण होकर तो परमगति को ही प्राप्त होते हैं। फिर क्या कहना है, कि पुण्य शील ब्राह्मणजन तथा राजऋषि भक्तजन परम गति को प्राप्त होते हैं ? इसलिये तू सुख रहित और क्षण भंगुर इस मनुष्य शरीर को प्राप्त हो कर निरन्तर मेरा ही भजन कर क्योंकि मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है, इसलिए नाशवान और सुख रहित होने से तथा अज्ञान से सुख रूप भासने वाले विषय भोगों में न फंस कर निरन्तर मेरा ही भजन कर। केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से नित्य, निरन्तर अचल मन वाला हो और मुझ परमेश्वर को ही श्रद्धा प्रेम सहित निष्काम भाव से नाम गुण और प्रभाव के श्रवण कीर्तन मनन और पठन-पाठन द्वारा निरन्तर भजने वाला हो तथा मेरा (शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट-कुण्डलादि भूषणों से युक्त पीताम्बर, वनमाला और कौस्तुभमणिधारी विष्णु का) मन, वाणी और शरीर के द्वारा सर्वस्व अर्पण करके, अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से बिह्वलता पूर्वक पूजन करने वाला हो और मुझ सर्व शक्तिमान विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणों से सम्पन्न सबके आश्रय रूप वासुदेव को विनय भाव पूर्वक, भक्ति सहित, साष्टांग दण्डवत प्रणाम कर, इस प्रकार मेरे शरण हुआ तू आत्मा को मेरे में एकीभाव कर के मेरे को ही प्राप्त होवेगा ॥ ३२-३३-३४ ॥

Arjuna, women, Vaisyas (members of the trading and agriculturist classes), Sudras (those) belonging to the labouring and artisan classes, as well as those of vile birth (such as the pariah), whoever they may be, taking refuge in Me they too attain the supreme goal. How much more, then, holy Brahmans and royal sages devoted to Me ! Therefore, having obtained this joyless and transient human life, constantly worship Me. Fix your mind on Me, be devoted to Me, worship Me and make obeisance to Me; thus linking your self with Me and entirely depending on Me, you shall come to Me. (32-33-34)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः । यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥
न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः । अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले, हे महाबाहो ! फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभाव युक्त वचन श्रवण कर, जो कि मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिये हित की इच्छा से कहूँगा । हे अर्जुन ! मेरी उत्पत्ति को अर्थात् विभूति सहित लीला से प्रकट होने को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं का और महर्षियों का भी आदि कारण हूँ ॥ १-२ ॥

Shri Bhagavan said : Arjuna, hear once again My supreme word, which I shall speak to you, are so loving, out of solicitude for your welfare. Neither gods nor the great sages know the secret of My birth (i.e., My appearance in human or other garb out of mere sport); for I am the prime cause in all respects of gods as well as of the great seers. (1–2)

★ ★

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् । असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः । सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः । भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥

और जो मेरे को अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्म रहित और अनादि तथा लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है । और हे अर्जुन ! निश्चय करने की शक्ति एवं तत्व ज्ञान और अमूढ़ता, क्षमा, सत्य तथा इन्द्रियों का वश में करना और मन का निग्रह तथा सुख, दुःख, उत्पत्ति और प्रलय एवं भय और अभय भी । तथा अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, कीर्ति और अपकीर्ति ऐसे यह प्राणियों के नाना प्रकार के भाव मेरे से ही होते हैं ॥ ३-४-५ ॥

He who knows Me in reality as birthless and without beginning, and as the supreme Lord of the Universe, he, undeluded among men, is purged of all sins. Reason, right knowledge unclouded understanding, forbearance, veracity, control over the senses and mind, joy and sorrow, evolution and dissolution, fear and fearlessness, non-violence, equanimity. contentment, austerity, charity fame and obloquy,—these diverse traits of creatures emanate from Me alone

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा । मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः । सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥

और हे अर्जुन ! सात तो महर्षिजन और चार उनसे भी पूर्व में होने वाले सनकादि तथा स्वायंभुव आदि चौदह मनु, यह मेरे में भाव वाले सबके सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, कि जिनकी संसार में यह सम्पूर्ण प्रजा है । और जो पुरुष इस मेरी परमैश्वर्य रूप विभूति को और योग शक्ति को तत्त्व से जानता है, वह पुरुष निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नही है ॥ ६-७ ॥

The seven great seers, their four elders (Sanaka and others), and the fourteen Manus or progenitors of mankind (such as Swayambhuva and his successors), who are all devoted to me, were born of My will; from them all these creatures in the world have descended. He who knows in reality this supreme divine glory and supernatural power of Mine gets established in Me through unfaltering Devotion; of this there is no doubt. (6–7)

★ ★

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते । इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूं और मेरे से हो सब जगत चेष्टा करता है इस प्रकार तत्व से समझकर श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमान भक्तजन मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं । और वे निरन्तर मेरे में मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए ही संन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही निरन्तर रमण करते हैं ॥ ८-९ ॥

I am the source of all creation and everything in the world moves because of Me; knowing thus the wise, full of devotion, constantly worship Me. With their mind fixed on Me, and their lives surrendered to Me, enlightening one another about My greatness and speaking of Me, My devotees ever remain contented and take delight in Me. (8–9)

★ ★

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम् । ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः । नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

उन निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेम पूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञान रूप योग देता हूँ कि जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं । और हे अर्जुन ! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिये ही मैं स्वयं उनके अन्तकरण में एकीभाव से स्थित हुआ अज्ञान से उत्पन्न हुए

अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान रूप दीपक द्वारा नष्ट करता हूँ ॥ १०-११ ॥

On those ever united through meditation with Me and worshipping Me with love, I confer that Yoga of wisdom through which they come to Me. In order to shower My grace on them I, dwelling in their heart, dispel the darkness born of ignorance by the shining light of wisdom. (10-11)

★ ★

अर्जुन उवाच

परंब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् । पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा । असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीसि मे ॥

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला हे भगवन ! आप परब्रह्म और परमधाम एवं परम पवित्र है क्योंकि आपको सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं, वैसे ही देव ऋषि नारद तथा असित और देवल-ऋषि तथा महर्षि व्यास और स्वयम् आप भी मेरे प्रति कहते हैं ॥ १२-१३ ॥

Arjuna, said : You are the transcendent Eternal, the supreme Abode and the greatest purifier; all the seers speak of You as the eternal divine Purusa, the primal Deity, unborn and all-pervading, Likewise speak the celestial sage Narada, the sages Asita, and Devala and the great sage Vyasa; and Yourself too proclaim this to me. (12-13)

★ ★

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव । न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥
स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम । भूतभावन भूतेश देव-देव जगत्पते ॥

और हे केशव ! जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं इस समस्त को मैं सत्य मानता हूं, हे भगवन ! आपके लीलामय स्वरूप को न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं। हे भूतों के उत्पन्न करने वाले ! हे भूतों के ईश्वर हे देवों के देव ! हे जगत के स्वामी ! हे पुरुषोत्तम ! आप आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं ॥ १४-१५ ॥

Krishna, I believe as true all that You tell me, Lord, neither demons nor gods are aware of Your manifestation through sport. O Creator of beings, O Ruler of creatures, god of gods, the Lord of the universe, O supreme Purusa, You alone know what You are by Yourself. (14-15)

★ ★

वक्तुमर्हस्य शेषेण दिव्याह्यात्मविभूतयः । याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् । केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥
विस्तरेणात्मनोयोगं विभूतिं च जनार्दन । भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥

इसलिये हे भगवन ! आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियों को सम्पूर्णता से कहने के लिये योग्य है कि जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त कर के स्थित हैं । हे योगेश्वर ! मै किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ आपको जानूं और हे भगवन ! आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं । और हे जनार्दन ! अपनी योग शक्ति को और परमैश्वर्य रूप विभूति को फिर भी विस्तार पूर्वक कहिये क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है, अर्थात् सुनने की उत्कण्ठा बनी रहती है ।। १६-१७-१८ ।।

Therefore, You alone can describe in full Your divine glories, whereby You stand pervading all these worlds. O Master of Yoga, through what process of contiunous meditation shall I konw You ? And in what particular forms, O Lord, are You to be meditated upon by me ? Krishna, tell me once more in detail Your power of Yoga and Your glory, for I konw no satiety in hearing Your nectar-like words. (16-17-18)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्याह्यात्मविभूतयः । प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ।।
अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः । अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।।

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं तेरे लिये अपनी दिव्य विभूतियों को प्रधानता से कहूँगा, क्योंकि मेरे विस्तार का अन्त नहीं है । हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ ।। १९-२० ।।

Shri Bhagavan said ; Arjuna, now I shall tell you My conspicuous divine glories; for there is no limit to My magnitude. Arjuna I am the universal Self seated in the heart of all beings; so I alone am the beginning and middle and also the end of all beings. (19-20)

★ ★

आदित्यनामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् । मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।।
वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मिवासवः । इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ।।

और हे अर्जुन ! मैं अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु अर्थात् वामन अवतार और ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूं तथा मैं उन्चास वायुदेवताओं में मरिचि नामक वायु देवता और नक्षत्रों में नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा हूँ । और मैं वेदों में सामवेद हूँ देवों में इन्द्र हूँ और इन्द्रियों में मन हूँ, भूत प्राणियों में चेतनता अर्थात् ज्ञान शक्ति हूँ ।। २१-२२ ।।

I am Vishnu among the twelve sons of Aditi, and the radiant sun among the luminaries; I am the glow of the Maruts (the forty-nine windgods), and the moon among the stars.

Among the Vedas, I am the Samaveda; among the gods, I am Indra. Among the organs of perception etc., I am the mind; and I am the consciousnes (life-energy) in living beings. (21-22)

★ ★

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् । वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥
पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् । सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥

और मैं एकादश रुद्रों में शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ और मैं आठ वसुओं में अग्नि हूँ तथा शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूँ। और पुरोहितों में मुख्य अर्थात् देवताओं का पुरोहित बृहस्पति मेरे को जान तथा हे पार्थ ! मैं सेनापतियों में स्वामिकार्तिक और जलाशयों में समुद्र हूँ ॥ २३-२४ ॥

Among the eleven Rudras (gods of destruction); I am Siva; and among the Yaksas and Raksasas; I am the lord of riches (Kubera). Among the eight Vasus, I am the god of fire; and among the mountains, I am the Meru. Among the priests, Arjuna, know Me to be their chief, Brihaspati. Among warrior-chiefs, I am Skanda (the generalissimo of the gods); and among the waters, I am the ocean. (23-24)

★ ★

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् । यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः । गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥

और हे अर्जुन ! मैं महर्षियों में भृगु और वचनों में एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूँ तथा सब प्रकार के यज्ञों में जप यज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ हूँ। और सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष और देवऋषियों में नारद मुनि तथा गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिलमुनि हूं ॥ २५-२६ ॥

Among the great seers, I am Bhrgu; among words, I am the sacred syllable OM. Among offerings, I am the offering of Japa (muttering of sacred farmulas); and among the immovables, the Himalaya. Among all trees, I am the Ashwattha (the holy fig tree); among the celestial sages, Narada, among the Gandharvas (celestial musicians); Chitraratha; and among the Siddhas, I am the sage Kapila. (25-26)

★ ★

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् । ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥
आयुधानामहंवज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् । प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥

और हे अर्जुन ! तू घोड़ों में अमृत से उत्पन्न होने वाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा और हाथियों में ऐरावत नामक हाथी तथा मनुष्यों में राजा को मेरे को ही जान। और हे अर्जुन !

मैं शस्त्रों में वज्र और गौओं में कामधेनु हूं और शास्त्रोक्त रीति से सन्तान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव हूँ, सर्पों में सर्पराज वासुकि हूँ ।। २७-२८ ।।

Among horses, know Me to be the celestial horse Utchaihsrava, begotten of the churning of the ocean along with nectar; among mighty elephants, Airavata (Indra,s elephant); and among men, the king, Among weapons, I am the thnnderbolt; among cows, I am the celestial cow Kamadhenu (the cow of plenty). I am the sextual desire which leads to procreation (as enjoined by the scriptures); among serpents, I am Vasuki (27–28)

★ ★

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् । पितृणामर्यमाचास्मि यमः संयमतामहम् ।।
प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् । मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।।

तथा मैं नागों में शेषनाग और जलचरों में उनका अधिपति वरुण देवता हूँ और पितरों में अर्यमा नामक पित्रेश्वर तथा शासन करने वालों में यमराज मैं हूँ । और हे अर्जुन ! मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गिनती करने वालों में समय हूं तथा पशुओं मे मृगराज (सिंह) और पक्षियों में गरुड़ हूँ ।। २९-३० ।।

Among Nagas(a specialclass of serpents) I am the serpent-god-Ananta and I am Varuna the lord of aquatic creatures, Among the manes, I am Aryama (the head of pitrs) and among the rulers I am Yama (the god of death). Amoug the Daityas, I am the great devotee Prahlada and anong reckoners I am time. so among quadrupeds, I am the lion , and among birds Garuda. (29–30)

★ ★

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् । झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ।।
सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन । अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ।।

और मैं पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूँ तथा मछलियों में मगरमच्छ हूँ । और नदियों श्रीभागीरथी गङ्गा हूँ । और हे अर्जुन ! सृष्टियों का आदि, अन्त और मध्य मैं ही हूँ तथा मैं विद्याओं में अध्यात्म विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या एवं परस्पर में विवाद करने वालों में तत्त्व निर्णय के लिये किया जाने वाला वाद हूँ ।। ३१-३२ ।।

Among purifiers, I am the wind; among warriors, I am Shri Rama. Among fishes, I am the shark; and among streams, I am the Ganges. Arjuna, I am the beginning and the middle and the end of all creations. Of sciences, I am the science of the soul, or metaphysics; in disputants, I am the right type of reasoning. (31–32)

★ ★

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च । अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ।।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् । कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥

तथा मैं अक्षरों में अकार और समासों में द्वन्द्व नामक समास हूँ तथा अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल और विराट् स्वरूप सबका धारण पोषण करने वाला भी मैं ही हूँ । हे अर्जुन ! मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूँ तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ ॥ ३३-३४ ॥

Among the sounds represented by the various letters, I am 'A' (the sound represented by the first letter of the alphabet); of the different kinds of compounds in grammar, I am the copulative compound. I am verily the endless Time (the devourer of Time, God); I am the sustainer of all, having My face on all sides. I am the all-destroying Death that santches all, and the origin of all that shall be born. Among women, I am Kirti, Shri, Vak, Smrti, Medha, Dhrti and Ksama (the goddesses presiding over glory, prosperity, speech, memory, intelligence, steadfastness and forbearance respectively). (33-34)

★ ★

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् । मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥
द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् । जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥

तथा मैं गायन करने योग्य श्रुतियों में बृहत्साम और छन्दों में गायत्री छन्द तथा महीनों में मार्गशीर्ष का महिना और ऋतुओं में वसन्त ऋतु मैं हूँ । हे अर्जुन ! मैं छल करने वालों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूँ तथा मैं जीतने वालों का विजय हूँ और निश्चय करने वालों का निश्चय एवं सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव हूँ ॥ ३५-३६ ॥

Likewise among the Srutis that can be sung, I am the variety known as Brhatsama; while among the Vedic hymns, I am the hymn known as Gayatri. Again, among the twelve months of the Hindu calendar, I am the month known as 'Margashirsa' [corresponding approximately to November]; [and] among the six seasons [successively appearing in India in course of a year] I am the vernal season. I am gambling among deceitful practices, and the glory of the glorious. I am the victory of the victorious, the resolve of the resolute, the goodness of the good. (35-36)

★ ★

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः । मुनिनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥
दण्डोदमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषिताम् । मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥

और वृष्णि वंशियों में वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तुम्हारा सखा और पाण्डवों में धनंजय अर्थात् तू एवं मुनियों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूं । और दमन करने वालों का दण्ड अर्थात् दमन करने की शक्ति हूँ, जीतने की इच्छा वालों की नीति हूँ और गोपनीयों

में अर्थात् गुप्त रखने योग्य भावों में मौन हूँ तथा ज्ञानवानों का तत्वज्ञान मैं ही हूँ ॥ ३७-३८ ॥

I am Krisna among the vrsnis Arjuna among the sons of Pandu, Vyasa among the sages, and sage SuKracharya among the wise. I amthe subduing power in rulers; I am righteousness in those who seek to conquer Of thing to be kept secret, I am am the custodian in the shape of reticence ; I am the wisdom of the wise. (37-38)

★ ★

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन । न तदस्ति विना यत्स्यान्मयाभूतं चराचरम् ॥
नान्तोस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप । एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥

और हे अर्जुन ! जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूँ क्योंकि ऐसा वह चर और अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मेरे रहित होवे, इसलिए सब कुछ मेरा ही स्वरूप हैं । हे परंतप मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है यह तो मैंने अपनी विभूतियों का विस्तार तेरे लिये एक देश से अर्थात् संक्षेप से कहा है ॥ ३९-४० ॥

Arjuna I am even that which is the seed of all life. For there is no creature; moving or inert, which exists without Me· Arjuna there is no limit to My divine manifestations. This is only a brief description by me of the extent of My glory.(39-40)

★ ★

यद्यद्विभूति मत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवाव गच्छत्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन । विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितोजगत् ॥

इसलिये हे अर्जुन ! जो जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्य युक्त एवं कान्ति युक्त और शक्ति युक्त वस्तु है, उस-उस को तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान । अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है, मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योगमाया के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ, इसलिये मेरे को ही तत्त्व से जानना चाहिये ॥ ४१-४२ ॥

Every such being as is glorious, brilliant and powerful know that to be a part manifestation of my glory. Or , what will you gain by knowing all this in detail, Arjuna ? Suffice it to say that I stand holding this entire universeby a fraction ofMy Yogic power(41-42)

★ ★

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् । यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।।
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशोमया । त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम ।।

इस प्रकार भगवान के वचन सुन कर अर्जुन बोला, हे भगवन ! मेरे पर अनुग्रह करने के लिये परम गोपनीय अध्यातम विषयक वचन अर्थात् उपदेश आपके द्वारा जो कहा गया, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है । क्योंकि हे कमल नेत्र ! मैंने भूतों की उत्पत्ति और प्रलय आप से विस्तार पूर्वक सुने हैं तथा आपका अविनाशी प्रभाव भी सुना है ।। १-२ ।।

Arjuna said Thanks to the most profound words of spiritual wisdom that you have spoken out of kindness to me, this delusion of me has entirely disappeared. For Krishna I have heard from You in detail an account of the evolution and dissolution of beings, and also Your immoral glory. (1-2)

★ ★

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर । द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ।।
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो । योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ।।

हे परमेश्वर ! आप आप अपने को जैसा कहते हो यह ठीक ऐसा ही है, परन्तु हे पुरुषोत्तम ! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज युक्त रूप को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ । इसलिये हे हे प्रभो ! मेरे द्वारा वह आपका रूप देखा जाना शक्य है, ऐसा यदि मानते हैं तो हे योगेश्वर ! आप अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये ।। ३-४ ।।

Lord You are precisely what you declare Yourself to be. But I long to see Your divine form (possessed of wisdom, glory, energy, strength valour and effulgence), O best of persons ! K i bna if you think that it can be seen by me, then, O Lord of yoga reveal to mo Your imperishable form. (3-4)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः । नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा । बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ।।

इस प्रकार अर्जुन के प्रार्थना करने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे पार्थ ! मेरे सैंकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख। और हे भरतवंशी अर्जुन ! मेरे में आदित्यों को अर्थात् अदिति के द्वादश पुत्रों को और आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को तथा तथा दोनों अश्विनीकुमारों को और उनचास मरुद्गणों को देख तथा और भी बहुत से पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख ।। ५-६ ।।

Shri Bhagavan said, Arjuna, behold presently in hundreds and thousands My multifarious divine forms. of various colours and shapes. Behold in me Arjuna the twelve sons of aditi, the eight Vasus, the eleven Rudras (gods of destruction), the two Aswinikumaras (the twin-born physicians of gods) and forty-nine Maruts (wind-gods), and witness many more wonderful forms never seen before. (5-6)

★ ★

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् । मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ।।
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुसा । दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।

और हे अर्जुन ! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित हुए चराचर सहित संपूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है, सो देख। परन्तु मेरे को इन अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने को निःसन्देह समर्थ नहीं है, इसी से मैं तेरे लिये दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूँ, उससे तू मेरे प्रभाव को और योग शक्ति को देख ।। ७-८ ।।

Arjuna behold as concentrated within this body of Mine the entire creation consisting of both animate and inanimate beings whatever else you desire to see. But surely you can not see Me with these human eyes of yours; therefore I vouchsafe to you the divine eye. With this you behold My divine power of yoga. (7-8)

★ ★

संजय उवाच

एव मुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः । दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ।।
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् । अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् । सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ।।

संजय बोला, हे राजन ! महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करने वाले भगवान ने इस प्रकार कह कर उसके उपरांत अर्जुन के लिये परम ऐश्वर्य युक्त दिव्य स्वरूप दिखाया। और उस अनेक मुख और नेत्रों से युक्त तथा अनेक अद्भुत दर्शनों वाले एवं बहुत से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत से दिव्य शस्त्रों को हाथों में उठाये हुए, तथा दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुए और दिव्य गन्ध का अनुलेपन किये हुए एवं सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमा रहित, विराट् स्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा ।। ९-१०-११ ।।

Sanjaya said : My lord ! having spoken thus, Shri Krishna, the supreme Master of Yoga forthwith revealed to Arjuna His supremely glorious divine Form. Arjuna, saw the supreme Deity possessing many mouths and eyes, presenting many a wonderful sight, decked with many divine ornaments, wielding many uplifted divine weapons, wearing divine garlands and clothes, besmeared all over with divine sandal-pastes, full of all wonders, infinite and having faces on all sides. (9-10-11)

★ ★

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता । यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा । अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥
ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमाधनञ्जयः । प्रणम्य शिरसादेवं कृताञ्जलिर्भाषत ॥

और हे राजन ! आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न हुआ जो प्रकाश होवे, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही होवे । ऐसे आश्चर्यमय रूप को देखते हुए पाण्डु पुत्र अर्जुन ने उस काल में अनेक प्रकार से विभक्त हुए अर्थात् पृथक-पृथक हुए संपूर्ण जगत को उस देवों के देव श्रीकृष्ण भगवान के शरीर में एक जगह स्थित देखा । और उसके अनन्तर वह आश्चर्य से युक्त हुआ, हर्षित रोमों वाला अर्जुन विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा भक्ति सहित शिर से प्रणाम करके, हाथ जोड़े हुए बोला ॥ १२-१३-१४ ॥

If there be the effulgence of a thousand suns bursting forth all at once in the heavens, even that would hardly approch the splendour of the mighty Lord. Concentrated at one place in the person of that supreme Deity, Arjuna then beheld the whole universe with its manifold divisions. Then Arjuna, full of wonder and with the hair standing on end, reverentially bowed his head to the divine Lord, and with joined palms addressed Him thus. (12-13-14)

★ ★

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥

हे देव ! आपके शरीर में संपूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदाय को और कमल के आसन पर बैठे हुए ब्रह्मा को तथा महादेव को और संपूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ । और हे संपूर्ण विश्व के स्वामिन् ! आपको अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूं हे विश्वरूप ! आपके न अन्त को देखता हूँ तथा न मध्य को और न आदि को देखता हूँ ॥ १५-१६ ॥

Arjuna, said ; Lord, I behold within Your body all gods and hosts of different beings, Brahma throned on his lotus-seat, Siva and all Rishis and celestial serpents. O Lord of the universe, I see You endowed with numerous arms, bellies mouths and eyes and having innumerable forms extended on all sides. I see neither Your beginning nor middle, nor even Your end, manifested as You are in the form of the universe. (15-16)

★ ★

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥

और हे विष्णो ! आपको मैं मुकुट युक्त गदायुक्त और चक्र युक्त तथा सब ओर से प्रकाशमान तेज का पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योति युक्त, देखने में अति गहन और अप्रमेय स्वरूप सब ओर से देखता हूँ ॥ १७ ॥

I see You endowed with diadems, clubs and discuses, a mass of splendour flaming all round having the brilliance of a blazing fire and the sun, hard to gaze at and immeasurable on all sides. (17)

★ ★

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

इसलिये हे भगवन ! आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं और और आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं तथा आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है ॥ १८ ॥

You are the supreme indestructible worthy of being known; You are the ultimate refuge of this universe. You are, again, the protector of the ageless Dharma; I consider You to be the eternal imperishable Being. (18)

★ ★

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥

हे परमेश्वर ! मैं आपको आदि, अन्त और मध्य से रहित तथा अनन्त सामर्थ्य से युक्त और अनन्त हाथों वाला तथा चन्द्र सूर्य रूप नेत्रों वाला और प्रज्वलित अग्नि रूप मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूँ ॥ १९ ॥

I see you without beginning, middle or end, possessing unlimited prowess and endowed with numberless arms, having the moon and the sun for Your eyes, and blazing fire for Your mouth, and scorching this universe by Your radiance. (19)

द्यावा पृथिव्योरिमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुत रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन ॥

और हे महात्मन ! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का संपूर्ण आकाश तथा सब दिशाएं आप से ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक और भयङ्कर रूप को देख कर तीनों लोक अतिव्यथा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ २० ॥

Yonder space between heaven and earth and all the quarters are entirely filled by You alone. Seeing this transcendent; dreadful Form of Yours, O Soul of the universe, all the three worlds feel greatly alarmed. (20)

★ ★

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥

और हे गोविन्द ! वे सब देवताओं के समूह आप में ही प्रवेश करते हैं और कई एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपके नाम और गुणों का उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धों के समुदाय कल्याण होवे, ऐसा कह कर उत्तम-उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । और हे परमेश्वर ! जो एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य तथा आठ वसु और साध्यगण विश्वेदेव तथा अश्विनी कुमार और मरुद्गण और पितरों का समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष राक्षस और सिद्धगणों के समुदाय हैं, वे सब ही विस्मित हुए आपको देखते हैं ॥ २१-२२ ॥

Yonder hosts of gods are entering You; some with palms joined out of fear are uttering Your names and glories. Multitudes of Maharishis and Siddhas, saying 'Let there be peace' are extolling You by means of excellent hymns. The eleven Rudras, twelve Adityas and eight Vasus, the Sadhyas and Vishwedevas, the two Aswinikumaras and forty-nine Maruts, as well as the manes and multitudes of Gandharvas, Yaksas, Asuras and Siddhas, all these gaze upon You in amazement. (21-22)

★ ★

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥
नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥

और हे महाबाहो ! आपके बहुत मुख और नेत्रों वाले तथा बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले और बहुत उदरों वाले तथा बहुत सी विकराल जाड़ों वाले महान रूप को देख कर सब लोक व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ। क्योंकि हे विष्णो ! आकाश के साथ स्पर्श किये हुए देदीप्यमान अनेक रूपों से युक्त तथा फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देख कर भयभीत अन्तःकरण वाला मैं धीरज और शान्ति को नहीं प्राप्त होता हूँ ॥ २३-२४ ॥

Lord seeing this stupendous and dreadful Form of Yours possessing numerous mouths and eyes, many arms, thighs and feet, many bellies and many teeth, the worlds are terror-strok; so am I. Lord, seeing Your Form reaching the heavens, effulgent, multi-coloured, having its mouth wide open and possessing large flaming eyes, I, with my inmost self frightened, have lost self-control and find no peace. (23–24)

★ ★

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

और हे भगवन ! आपके विकराल जाड़ों वाले और प्रलय काल की अग्नि के समान प्रज्वलित मुखों को देख कर, दिशाओं को नहीं जानता हूँ और सुख को भी नहीं प्राप्त होता हूँ, इसलिये हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप प्रसन्न होवे ॥ २५ ॥

Seeing Your faces frightful on acconut of their teeth, and flaring like the fire at the time of universal destruction, I am utterly bewildered and find no happiness; therefore, be kind to me, O Lord of celestials and Resting-place of the universe. (25)

★ ★

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥

और मैं देखता हूँ कि वे सब ही धृतराष्ट्र के पुत्र राजाओं के समुदाय सहित आप में प्रवेश करते हैं और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धाओं सहित सबके सब । वेगयुक्त हुए आपके विकराल जाड़ों वाले भयानक मुखों में प्रवेश करते हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरों सहित आपके दातों के बीच में लगे हुए दीखते हैं ॥ २६-२७ ॥

All those sons of Dhritarashtra with hosts of kings are entering You. Bhishma, Drona and yonder Karna, with the principal warriors on our side as well, are rushing headlong into

Your fearful mouths looking all the more terrible on account of their teeth; some are seen stuck up in the gaps between Your teeth with their heads crushed. (26-27)

★ ★

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥

और हे विश्वमूर्ते ! जैसे नदियों के बहुत से जल के प्रवाह, समुद्र के ही सम्मुख दौड़ते हैं, अर्थात्समुद्र में प्रवेश करते हैं वे वैसे ही शूरवीर मनुष्यों के समुदाय भी आपके प्रज्वलित हुए मुखों में प्रवेश करते हैं ॥ २८ ॥

As the myriad streams of rivers rush towards the sea alone, so do those warriors of the mortal world enter Your flaming mouths. (28)

★ ★

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥

अथवा जैसे पतंग मोह के वश होकर, नष्ट होने के लिये, प्रज्वलित अग्नि में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही यह सब लोग भी अपने नाश के लिये आपके मुखों में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश करते हैं ॥ २९ ॥

As moths rush with great speed into the blazing fire for extinction out of their folly, even so all these people are with great rapidity entering Your mouths to meet their doom. (29)

★ ★

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥
आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

और आप उन संपूर्ण लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रसन करते हुए, सब ओर से चाट रहे हैं, हे विष्णो ! आपका उग्र प्रकाश संपूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपायमान करता है । हे भगवन ! कृपा करके, मेरे प्रति कहिये, कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं ? हे देवों में श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार होवे, आप प्रसन्न होइये, आदिस्वरूप आपको मैं तत्त्व से जानना चाहता हूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता ॥ ३०-३१ ॥

Swallowing through Your blazing mouths, You are licking all those people on all sides. Lord, Your terrible splendours are burning the entire universe, filling it with radiance. Tell

me who You are with a form so terrible. My obeisance to You, O best of gods, Bekind to me, I wish to know You, the Primal Being, in particular; for I I know not Your purpose. (30-31)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्री कृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन ! मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ, इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूं, इसलिये जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित हुए योद्धालोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे, अर्थात् तेरे युद्ध न करने से भी इन सब का नाश हो जायगा ॥ ३२ ॥

Shri Bhagavan said : I am inflamed Kala (the eternal Time-Spirit), the destroyer of the worlds. I am out to exterminate these people. Even without you all those warriors arrayed in the enemy's camp must die. (32)

★ ★

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥
द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥

इससे तू खड़ा हो और यश को प्राप्त कर तथा शत्रुओं को जीत कर धनधान्य से सम्पन्न राज्य को भोग और यह सब शूरवीर पहिले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन् ! तू तो केवल निमित्तमात्र ही हो जा। तथा इन द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू मार और भय मत कर निःसन्देह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा, इसलिये युद्ध कर ॥ ३३-३४ ॥

Therefore, do you arise and win glory; conquering foes, enjoy the affluent kinkdom. These warriors stand already slain by Me; be you only an instrument, Arjuna. Do you kill Drona and Bhishma and Jayadratha and Karna and even other brave warriors; who stand already killed by Me; fear not. You will surely conquer the enemies in this war; therefore fight. (33-34)

★ ★

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥

इसके उपरान्त संजय बोला कि, हे राजन् ! केशव भगवान के इस वचन को सुनकर, मुकुटधारी अर्जुन हाथजोड़े कांपता हुआ नमस्कार करके फिर भी भयभीत हुआ प्रणाम करके, भगवान श्रीकृष्णके प्रति गद्गद वाणी से बोला । ॥ ३५ ॥

sanjaya said – Hearing these words of Bhagavan Kesava, Arjuna tremblingly bowed to Him with joined palms,and bowing again in extreme terror spoke to Sri Krishna in faltering aecents. (35)

★ ★

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥
कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥

कि हे अन्तर्यामिन् ! यह योग्य ही है कि जो आपके नाम और प्रभाव के कीर्तन से जगत् अति हर्षित होता है और अनुराग को भी प्राप्त होता है तथा भयभीत हुए, राक्षसलोग दिशाओं में भागते राक्षसलोग सब दिशाओं की ओर भागते हैं और सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार करते हैं। हे महात्मन् ! ब्रह्मा के भी आदिकर्त्ता और सबसे बड़े, आपके लिए वे कैसे नमस्कार नहीं करें ? क्योंकि हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास जो सत्, असत् और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है वह आप ही हैं । ॥ ३६-३७ ॥

Arjuna said-Lord, well it is the universe exults and is filled with love by chanting Your names, virtues and glory; terrfied Raksasas are fleeing in all directions, and all the hosts of Siddhas are bowing to You. O great soul, why should they not bow to you, who are the progenitor of Brahma himself and the greatest of the great ? O infinite Lord of celestials, Abode of the universe, You are that which is existent (Sat), that which is non-existent (Asat) and also that which is beyond both,viz., the indestructible Brahma. (36-37)

★ ★

त्वमादि देवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासीवेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

हे प्रभो आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परमधाम हैं, हे अनन्तरूप आपसे यह सब जगत व्याप्त अर्थात परिपूर्ण

है । और हे हरे! आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा प्रजा के स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी पिता हैं, आपके लिये हजारों बार नमस्कार, नमस्कार होवे, आपके लिये फिर भी बारंबार नमस्कार होवे ॥ ३८ - ३९ ॥

You are the primal Deity, the most ancient Person, You are the ultimate resort of this universe. You are both the knower and the knowable, and the highest abode. It is you who pervade the universe, assuming endless forms. You are Vayu (the wind god), Yama (the god of death), Agni (the god of fire), the moon-god, Brahma (the Lord of creation), nay, the father of Brahma Himself. Hail hail to you a thousand times; salutations, repeated salutations to you once again. (38-39)

★ ★

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्त वीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥

और हे अनन्त सामर्थ्यवाले ! आपके लिए आगे से और पीछे से भी नमस्कार होवे, हे सर्वात्मन् ! आपके लिये सब ओर से ही नमस्कार होवे क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसार को व्याप्त किये हुये हैं इससे ही आप सर्वरूप हैं ॥ ४० ॥

O Lord of infinite prowess, my salutations to You from before and from behind. O soul of all, my obeisance to You from all sides indeed. You, who possess limitless might, pervade all; therefore, You are all. (40)

★ ★

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥
यच्चावहासार्थ मसत्कृतोऽसि विहार शय्यासन भोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥

हे परमेश्वर ! सखा ऐसे मानकर, आपके इस प्रभाव को न जानते हुये मेरे द्वारा प्रेम से अथवा प्रमाद से भी, हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा गया है । और हे अच्युत ! जो आप हंसी के लिए विहार शय्या, आसन और भोजनादिकों में, अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किए गए हैं, वह सब अपराध अप्रमेय स्वरूप अर्थात अचिन्त्य प्रभाव वाले आपसे मैं क्षमा कराता हूँ ॥ ४१-४२ ॥

The way in which I have importunately called out, either through intimacy or even through want of thought, "Ho Krishba ! Ho Yadava ! Ho Comrade !" and so on, suspecting not this greatness of Yours, and thinking You only to be a friend, and the way in which You have been slighted by me in jest, O sinless one, while at play, reposing, sittin, or at meals

either alone or even in the presence of others — for all that I crave forgiveness from You, who are infinite. (41-42)

★ ★

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

हे विश्वेश्वर ! आप इस चराचर जगत के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं, हे अतिशय प्रभाव वाले ! तीनों लोकों में आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक कैसे होवे ? । इससे हे प्रभो ! मैं शरीर को अच्छी प्रकार चरणों में रखके और प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिये प्रार्थना करता हूँ, हे देव ! पिता जैसे पुत्र के और सखा जैसे सखा के और पति जैसे प्रिय स्त्री के, वैसे ही आप भी मेरे अपराध को सहन करने के लिये योग्य हैं ॥ ४३-४४ ॥

You are the Father, nay, the greatest teacher of this moving and unmoving creation, and worthy of adoration. O Lord of incomparable might, in all the three worlds there is none else even equal to You; how, then, any better ? Therefore, Lord, prostrating my body at Your feet and bowing low I seek to propitiate You, the ruler of all and worthy of all praise. It behoves You to bear with me even as a father bears with his son, a friend with his friend and a husband wlth his beloved supouse. (43-44)

★ ★

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥

हे विश्वमूर्ते ! मैं पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूप को देख कर हर्षित हो रहा हूं और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है, इसलिये हे देव ! आप उस अपने चतुर्भुज रूप को दिखाइये । हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न होइये । और हे विष्णो मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुये तथा गदा और चक्र हाथ में लिये हुए देखना चाहता हूँ, इसलिये हे विश्वरूप ! हे सहस्रबाहो ! आप उस ही चतुर्भुज रूप से युक्त होइये ॥ ४५-४६ ॥

Having seen Your wondrous form, which was never seen before, I feel transported with joy; at the same time my mind is tormented by fear. Pray reveal to me that divine form; the form of Vishnu with four arms; O Lord of celestials; Abode of ths universe, be gracious.

I wish to see You adorned in the same way with a diadem on the head, and holding a mace and a discus in two of Your hands. O Lord with a thousand arms, O Universal Being, appear again in the same four-armed Form. (45-46)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥

इस प्रकार अर्जुन की प्रार्थना को सुन कर, श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन ! अनुग्रह पूर्वक मैंने अपनी योग शक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय सबका आदि और सीमा रहित विराट् रूप तेरे को दिखाया है, जो कि तेरे सिवाय दूसरे से पहिले नहीं देखा गया ॥ ४७ ॥

Shri Bhagavan said : Arjuna ! pleased with you I have shown you, through My own power of Yoga, this supreme, effulgent, primal and infinite Cosmic Body, which was never seen before by anyone eles than you. (47)

★ ★

न वेद यज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥
मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥

हे अर्जुन ! मनुष्य लोक में इस प्रकार विश्वरूप वाला मैं न वेदों के अध्ययन से, न यज्ञों से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही तेरे सिवाय दूसरे से देखा जाने को शक्य हूँ । इस प्रकार के मेरे इस विकराल रूप को देखकर तेरे को व्याकुलता न होवे और मूढ़ भाव भी न होवे और भय रहित, प्रीतियुक्त मन वाला तू उस ही मेरे इस शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म सहित चतुर्भुज रूप को फिर देख ॥ ४८-४९ ॥

Arjuna, in this mortal world I connot be seen in this Form by anyone else than you, either through study of the Vedas or of rituals, or again through gifts, actions or austere penances. Seeing such a dreadful Form of Mine as this, be not perturbed or perplexed; with a fearless and complacent mind, behold once again the same four-armed Form of Mine (bearing the conch, discus, mace and lotus). (48-49)

★ ★

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥

उसके उपरान्त संजय बोला, हे राजन! वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति इस प्रकार कह कर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखाया और फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्य मूर्ति होकर, इस भयभीत हुए अर्जुन को धीरज दिया ॥ ५० ॥

Sanjaya said : Having spoken thus to Arjuna, Bhagavan Vasudeva again showed to him in the same way His own four-armed Form; and then, assuming a gentle form, the high-souled Shri Krishna consoled the frightened Arjuna. (50)

★ ★

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन। इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः॥

उसके उपरांत अर्जुन बोला, हे जनार्दन! आपके इस अति शान्त मनुष्य रूप को देख कर अब मैं शान्तचित्त हुआ अपने स्वभाव को प्राप्त हो गया हूं ॥ ५१ ॥

Arjuna, said – Krishna, seeing this gentle human form of Yours I have regained my composure and am myself again. (51)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम। देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः॥
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

इस प्रकार अर्जुन के वचन को सुनकर श्रीकृष्ण भगवान बोले हे अर्जुन! मेरा यह चतुर्भुज रूप देखने को अति दुर्लभ है, जिसको तुमने देखा है, और देवता भी सदा इस रूप के दर्शन करने की इच्छा वाले हैं। और हे अर्जुन! न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं देखा जाने को शक्य हूँ जैसे मेरे को तुमने देखा है ॥ ५२-५३ ॥

Shri Bhagavan said – This form of Mine (with four arms) which you have just seen is exceedingly difficult to perceive. Even the gods are always eager to behold this form. Neither by study of the Vedas nor by penance, nor again by charity, nor even by ritual can I be seen in this form (with four arms) as you have seen Me. (52–53)

★ ★

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

परन्तु हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्य भक्ति करके तो, इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिये और तत्त्व से जानने के लिये तथा प्रवेश करने के लिये अर्थात् एकीभाव से

प्राप्त होने के लिये भी शक्य हूँ । हे अर्जुन ! जो पुरूष केवल मेरे ही लिये सब कुछ मेरा समझता हुआ यज्ञ, दान और तप आदि संपूर्ण कर्तव्य कर्मों को करने वाला है, और मेरे परायण है अर्थात् मेरे को परम आश्रय और परम गति मान कर मेरी प्राप्ति के लिये तत्पर है तथा मेरा भक्त है अर्थात् मेरे नाम, गुण, प्रभाव और रहस्य के श्रवण, कीर्तन, मनन, ध्यान और पठन पाठन का प्रेम सहित निष्काम भाव से निरन्तर अभ्यास करने वाला है और आसक्ति रहित है अर्थात् स्त्री, पुत्र और धनादि संपूर्ण सांसारिक पदार्थों में स्नेह रहित और संपूर्ण भूत प्राणियों में वैर-भाव से रहित है ऐसा वह अनन्य भक्ति वाला पुरुष मेरे को ही प्राप्त होता है ।। ५४-५५ ।।

Through single-minded devotion, however, I can be seen in this form (with four arms), nay, known in essence and even entered into, O valiant Arjuna. Arjuna, he who performs all his duties for My sake, depends on Me, is devoted to Me; has no attachment, and is free from malice towards all beings, reaches Me. (54-55)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते । ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर, अर्जुन बोला, हे मनमोहन ! जो अनन्य प्रेमी भक्तजन, इस पूर्वोक्त प्रकार से, निरन्तर आपके भजन-ध्यान में लगे हुये, आप सगुणरूप परमेश्वर को, अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी, सच्चिदानन्दघन निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं ? ॥ १ ॥

Arjuna said ; The devotees who, with their minds constantly fixed on You as shown above, adore You as possessed of form and attributes, and those who adore as the supreme Reality only the indestructible unmanifest Brahma (who is Truth, Knowledge and Bliss solidified) of these two types ot wcrshippers who are the best kuowers of Yoga ? (1)

★ ★

श्री भगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते । श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते । सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः । ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर, श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन ! मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन, ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन, अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूँ । और जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके, मन, बुद्धि से परे, सर्वव्यापी अकथनीयस्वरूप और सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत हुए और सबमें समानभाव वाले योगी मेरे को ही प्राप्त होते हैं ॥ २-३-४ ॥

Sri Bhagavan said ; I consider them to be the best yogis, who endowed with supreme faith and ever united throught meditation with Me, worship Me with the mind centred on Me. Those, however, who fully controlling all their senses and evenminded towards, all and devoted to the welfare of all beings, constantly adore as their very self the unthinkable, omnipresent,

indestructible indefinable, eternal, immovable, unmanifiest and changeless Brahma, they too come to Me. (2-3-4)

★ ★

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः । अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥

किन्तु उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त हुये चित्तवाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियों से अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है, अर्थात जबतक शरीर में अभिमान रहता है, तबतक शुद्धसच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में स्थिति होनी कठिन है। और जो मेरे परायण हुये भक्तजन, संपूर्ण कर्मों को मेरेमें अर्पण करके, मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही तैलधारा के सदृश, अनन्य ध्यानयोग से निरन्तर चिन्तन करते हुये भजते हैं ॥ ५-६ ॥

Of course, the strain is greater for those who have their mind attached to the Unmanifest, for at-one-ment with the Unmanifest is attained with difficulty by those who are centred in the body. On the other hand, those who depending exclusively on Me, and surrendering all actions to Me, worship Me (God with attributes), constantly meditating on Me with single-minded devotion. (5-6)

★ ★

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय । निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

हे अर्जुन ! उन मेरे में चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार समुद्र से पार करने वाला होता हूँ। इसलिये हे अर्जुन ! तू मेरे में मन को लगा और मेरे में ही बुद्धि को लगा, इसके उपरान्त तू मेरे में ही निवास करेगा अर्थात मेरे को ही प्राप्त होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ७-८ ॥

These, Arjuna, I speedily deliver from the ocean of birth and death, their mind being fixed on Me. Therefore, fix your mind on Me, and establish your intellect in Me alone, thereafter you will abide solely in Me. There is no doubt about it. [7-8]

★ ★

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् । अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥
अभ्यासेऽप्य समर्थोऽसि मत्कर्म परमो भव । मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥

और यदि तू मन को मेरे में अचल स्थापन करने के लिये समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन ! अभ्यासरूप योग के द्वारा मेरे को प्राप्त होने के लिये इच्छा कर। और यदि तू ऊपर कहे हुए

अभ्यास में भी असमर्थ है, तो केवल मेरे लिये कर्म करने के ही परायण हो, इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मों को करता हुआ मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा ॥ ९-१० ॥

If you cannot steadily fix the mind on Me, Arjuna, then seek to attain Me through the Yoga of repeated practice. If you are unequal even to the pursuit of such practice, be intent to work for Me; you shall attain perfection [in the shape of My realization] even by performing actions for My sake. [9.10]

★ ★

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः । सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते । ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्

और यदि इसको भी करने के लिये असमर्थ है, तो जीते हुये मनवाला और मेरी प्राप्तिस्वरूप योग के शरण हुआ सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग कर। क्योंकि मर्म को न जानकर किये हुये अभ्यास से परोक्षज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्षज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यान से भी, सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग करना श्रेष्ठ है और त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है ॥ ११-१२ ॥

If, taking recourse to the Yoga of My realization, you are unable even to do this, then, subduing your mind and intellect etc., relinquish the fruit of all actions. Knowledge is better than practice (without discernment), meditation on God is superior to knowledge, and renunciation of the fruit of actions is even superior to meditation; for peace immediately follows from renunciation. (11–12)

★ ★

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च । निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

इस प्रकार शान्ति को प्राप्त हुआ जो पुरुष, सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थरहित सब का प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित, सुखदुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात अपराध करने वाले को भी अभय देनेवाला है। तथा जो ध्यानयोगमें युक्त हुआ, निरन्तर लाभ-हानि में सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर को वश में किये हुये, मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किये हुये मन बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझे प्रिय है। ॥ १३-१४ ॥

He who is free from malice towards all beings, friendly and compassionate, rid of 'I' and 'mine', balanced in joy and sorrow, forgiving by nature, ever-contented and mentally united with Me, nay, who has subdued his mind and reason to Me,—that devotee of Mine is dear to Me. (13–14)

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः । हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः । सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है, तथा जो हर्ष-अमर्ष भय और उद्वेगादिकोंसे रहित है, वह भक्त मेरे को प्रिय है । और जो पुरुष आकाङ्क्षा से रहित तथा बाहर- भीतर से शुद्ध और चतुर है अर्थात जिस काम के लिये आया था उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरम्भों का त्यागी अर्थात मन, वाणी और शरीर द्वारा प्रारब्ध से होने वाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मोंमें कर्तापन के अभिमानका त्यागी, मेरा भक्त मेरेको प्रिय है । ।। १५-१६ ।।

He who is not a source of annoyance to his fellow-creatures, and who in his turn does not feel vexed with fellow creatures, and who is free from delight, and envy, perturbation and fear, is dear to Me. He who wants nothing, who is both internally and externally pure, is clever and impartial, and has risen above all distractions, and who renounces the feeling of doership in all undertakings,-that devotee of Mine is dear to Me. (15-16)

★ ★

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति । शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।।

और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोच करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है । और जो पुरुष शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखादिक द्वन्द्वों में सम है और सब संसार में आसक्ति से रहित है ।। १७-१८ ।।

He who neither rejoices nor hates, nor grieves, nor desire, and who renounces both good and evil actions and is full of devotion, is dear to Me. He who is alike to friend and foe, as well as to honour and ignominy, who remains balanced in heat and cold, pleasure and pain and other contrary experiences, and is free from attachment. (17-18)

★ ★

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् । अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते । श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।।

तथा जो निन्दा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है, अर्थात् ईश्वर के स्वरूप का निरन्तर मनन करने वाला है एवं जिस किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही सन्तुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थिर बुद्धिवाला, भक्तिमान पुरुष मेरे को प्रिय है । और जो मेरे परायण हुए अर्थात् मेरे को परम आश्रय और परम गति एवं सबका

आत्मरूप और सबसे परे, परम पूज्य समझकर, विशुद्ध प्रेम से मेरी प्राप्ति के लिए तत्पर हुए श्रद्धायुक्त पुरुष, इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते रहते हैं वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं ॥ १९-२० ॥

He who takes praise and reproach alike, and is given to contemplation and contented with any means of subsistence whatsoever, entertaining no sense of ownership and attachment in respect of his dwelling-place and full of devotion to Me, that man is dear to Me. Those devotees, however, who partake in a disinterested way of this nectar of pious wisdom set forth above, endowed with faith and solely devoted to Me, they are extremely dear to Me. (19-20)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते । एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान फिर बोले, हे अर्जुन ! यह शरीर क्षेत्र है, ऐसे कहा जाता है, और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उनके तत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं । और हे अर्जुन ! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मेरे को ही जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात् विकार सहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्त्व से जानना है वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है ॥ १-२ ॥

Shri Bhagavan said : This body, Arjuna, is termed as the Field (Ksetra); and him who knows it, the sages discerning the truth about both refer to as the knower of the Field (Ksetrajna). Know Myself to be the Ksetrajna (individual soul) also in all the Ksetras, Arjuna. And it is the knowledge of Ksetra and Ksetrajna (i. e., of Matter with its evolutes and the Spirit) which I consider as wisdom. (1-2)

★ ★

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् । स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥
ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् । ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥

इसलिए, वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाववाला है वह सब संक्षेप से मेरे से सुन । यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्त्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है अर्थात समझाया गया है और नाना प्रकार के वेदमन्त्रों से विभागपूर्वक कहा गया है तथा अच्छी प्रकार निश्चय किये हुये युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा वैसे ही कहा गया है ॥ ३-४ ॥

What that Ksetra is and what it is like, and also what are its evolutes, again, whence is what. and also finally who that Ksetrajna is and what his glory-hear all this from Me in a nutshell. The truth about the Ksetra and the Ksetrajna has been expounded by the seers in manifold ways: again, it has been separately stated in different Vedic chants and also in the conclusive and reasoned texts of the Brahmsautras. (3-4)

★ ★

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च । इन्द्रियाणि दशैकं च पंचचेन्द्रिय गोचराः ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः । एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥

और हे अर्जुन ! वही मैं तेरे लिये कहता हूँ कि पांच महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, जल, और पृथ्वी का सूक्ष्मभाव, अहंकार, बुद्धि और मूलप्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया भी तथा दस इन्द्रियां श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण एवं वाक् , हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा, एक मन और पाँच इन्द्रियों के विषय अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध । तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और स्थूल देह का पिण्ड एवं चेतनता और धृति इस प्रकार यह क्षेत्र विकारों के सहित संक्षेप से कहा गया ॥ ५-६ ॥

The five elements, the ego, the intellect, the Unmanifiest (Primordial Matter), the ten organs (of perception and action), the mind, and the five objects of sense [sound, touch, colour, taste and smell]; Also desire, aversion, pleasure, pain, the physical body, consciousness, firmness ; thus is the Ksetra, with its evolutes, briefly stated. (5-6)

★ ★

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

और हे अर्जुन ! श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, प्राणीमात्र को किसी प्रकार भी न सताना और क्षमाभाव तथा मन, वाणी की सरलता, श्रद्धा-भक्ति सहित गुरू की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह ।

तथा इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख-दोषों का बारम्बार विचार करना ॥ ७–८ ॥

Absence of pride, freedom from hypocrisy, non-violence, fobearance, straightness of body, speech and mind, devout service of the preceptor, internal and external purity, steadfastness of mind and control of body, mind and the senses. Dispassion towards the objects of enjoyment of this world and the next, and also absence of egotism, pondering again and again on the pain and evils inherent in birth, death, old age and disease. (7-8)

★ ★

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

तथा पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना अर्थात् मन के अनुकूल तथा प्रतिकूल के प्राप्त होने पर, हर्ष-शोकादि विकारों का न होना। और मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थितिरूप ध्यानयोग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकान्त शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय से प्रेम का न होना ॥ ९–१० ॥

Absence of attachment and the feeling of mineness in respect of son, wife, home etc., and constant equipoise of mind both in favourable and unfavourable circumstances; Unflinching devotion to Me through exclusive attachment, living in secluded and holy places, and finding no enjoyment in the company of men. (9-10)

★ ★

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते । अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥

तथा अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को सर्वत्र देखना, यह सब तो ज्ञान है और जो इसके विपरीत है, वह अज्ञान है ऐसे कहा है। और हे अर्जुन ! जो जानने के योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है, उसको अच्छी प्रकार कहूँगा, वह आदिरहित, परमब्रह्म अकथनीय होने से न सत कहा जाता है और न असत ही कहा जाता है ॥ ११—१२ ॥

Fixity in self-knowledge and seeing God as the object of true knowledge; all this is declared as Knowledge; and what is other than this is called ignorance. I shall speak to you at length about that which ought to be known, and knowing which one attains supreme Bliss. That supreme Brahma, who is the lord of beginningless entities, is said to be neither Sat (being) nor Asat (non-being). (11-12)

★ ★

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् । असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥

परन्तु वह सब ओर से हाथ, पैर, नेत्र, सिर, मुख और श्रोत्रवाला है क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है। और सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्तिरहित और गुणों से अतीत हुआ भी अपनी योगमाया से सबको धारण- पोषण करनेवाला और गुणों को भोगने वाला है ॥ १३–१४ ॥

It has hands and feet on all sides, eyes, head and mouth in all directions, and ears all round; for It stands pervading all in the universe. Though perceiving all sense-objects It is really speaking, devoid of all senses. Nay, though unattached, it is the sustainer of all nonetheless; and though attributeless, It is the enjoyer of qualities (the three modes of Prakrati). (13-14)

★ ★

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च । सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् । भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥

तथा वह परमात्मा चराचर सब भूतोंके बाहर–भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर में भी वही स्थित है । और वह विभागरहित, एकरूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर सम्पूर्णभूतों में पृथक्-२ के सदृश स्थित प्रतीत होता है तथा वह जानने योग्य परमात्मा विष्णुरूप से भूतों को धारण पोषण करने वाला और रुद्ररूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मारूप से सबका उत्पन्न करनेवाला है ॥ १५-१६ ॥

It exists without and within all beings, and constitutes the animate and inanimate creation as well. And by reason of Its subtlety, It is incomprehensible; It is close at hand and stands afar too. Though integral like space in Its undivided aspect, It appears divided as it were in all animate and inanimate beings. And that Godhead, which is the only object worth knowing, is the sustainer of beings (as Visnu), the destroyer (as Rudra) and the creator of all (as Brahma). (15-16)

★ ★

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते । ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥
इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः । मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥

और वह ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जाता है तथा वह परमात्मा बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में स्थित है । हे अर्जुन इस प्रकार का क्षेत्र तथा ज्ञान और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप संक्षेप से

कहा गया, इसको तत्त्व से जानकर मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है ॥ १७-१८ ॥

That supreme Brahma is said to be the light of all lights, and entirely beyond Maya. That godhead is Knowledge itself, worth knowing, and worth attaining through real wisdom, and is particnlarly seated in the heart of all. Thus the truth of the Kshetra and knowledge, as well as of the object worth knowing, God has been briefly discussed, knowing this in reality, My devotee enters into My Being. (17-18)

★ ★

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि । विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते । पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥

और हे अर्जुन ! प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी मेरी माया और जीवात्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ, इन दोनों को ही तू अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान । क्योंकि कार्य और करण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दुःखों के भोक्तापन में अर्थात् भोगने में हेतु कहा जाता है ॥ १९-२० ॥

Prakriti and Purusa, know both these as beginningless. And know all modifications such as likes and dislikes etc. and all objects constituted of the three Gunas as born of Prakriti. Prakriti is said to be responsible for bringing forth the evolutes and the instruments; while the iudividual soul is declared to be the cause of experience of joys and sorrows. (19–20)

★ ★

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् । कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥
उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः । परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥

परन्तु प्रकृति में स्थित हुआ पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए त्रिगुणात्मक सब पदार्थों को भोगता है और इन गुणों का सङ्ग ही इस जीवात्मा के अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने में कारण है । वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ भी पर अर्थात् त्रिगुणमयी माया से सर्वथा अतीत ही है, केवल साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता एवं सबको धारण करने वाला होने से भर्ता, जीवरूप से भोक्ता तथा ब्रह्मादिकों का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होने से परमात्मा ऐसा कहा गया है ॥ २१–२२ ॥

Only the Purusa seated in Prakriti senses objects of the nature of the three Gunas evolved from Prakriti. And it is contact with these Gunas that is responsible for the birth of this soul in good and evil wombs. The Spirit dwelling in this body, is really the same as the Supreme. He has been spoken of as the Witness, the true Guide, the Sustainer of all, the Experiencer (as the embodied soul), the Overlord and the Absolute as well. (21–22)

★ ★

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह । सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥
ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना । अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्त्व से जानता है वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फिर नहीं जन्मता है अर्थात् पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! उस परम पुरुष परमात्मा को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्मबुद्धि से, ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं तथा अन्य कितने ही ज्ञानयोग के द्वारा देखते हैं और अपर कितने ही निष्काम कर्मयोग के द्वारा देखते हैं ॥ २३-२४ ॥

He who thus knows the Purusa [Spirit] and Prakriti [Nature] together with the Gunas,-even though performing his duties in every way, is never born again. Some by meditation behold the supreme Spirit in the heart with the help of their refined and sharp intellect; others realize It through the discipline of Knowledge, and others, again, through the discipline of Action. (23-24)

★ ★

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते । तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥
यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् । क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धि वाले पुरुष हैं वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए, दूसरों से अर्थात् तत्त्व के जानने वाले पुरुषों से सुनकर ही उपासना करते हैं, अर्थात् उन पुरुषों के कहने के अनुसार ही श्रद्धा सहित तत्पर हुए साधन करते हैं और वे सुनने के परायण हुए पुरुष भी मृत्युरूप संसार सागर को निःसन्देह तर जाते हैं। हे अर्जुन ! यावन्मात्र जो कुछ भी स्थावर, जङ्गम वस्तु उत्पन्न होती है, उस सम्पूर्ण को तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न हुई जान, अर्थात् प्रकृति और पुरुष के परस्पर के सम्बन्ध से ही संपूर्ण जगत की स्थिति है, वास्तव में तो सम्पूर्ण जगत नाशवान और क्षणभंगुर होने से अनित्य है ॥ २५-२६ ॥

Other dull-witted persons, however, not knowing thus, worship even as they have heard from others; and even those who are thus devoted to hearing, are able to cross the ocean of mundane existance in the shape of death. Arjuna, whatever being, animate or inanimate, is born, know it as emanated from the union of Ksetra (Matter) and the Ksetrajana [Spirit]. (25-26)

★ ★

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥
समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् । न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

इस प्रकार जानकर, जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को

समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है। क्योंकि वह पुरुष सबमें समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता है, अर्थात् शरीर का नाश होने से अपने आत्मा का नाश नहीं मानता है, इससे वह परमगति को प्राप्त होता है ॥ २७-२८ ॥

He alone truly sees, who sees the supreme Lord as imperishable and abiding equally in all perishable beings, both animate and inanimate. For he who kills not himself by himself by seeing the supreme Lord, equally present in all, as one, thereby reaches the supreme states. (27-28)

★ ★

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः। यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति। तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥

और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किये हुए देखता है अर्थात् इस बात को तत्त्व से समझ लेता है कि, प्रकृति से उत्पन्न हुए सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बर्तते हैं तथा आत्मा को अकर्ता देखता है, वही देखता है। और यह पुरुष जिस काल में भूतों के भिन्न-भिन्न भावों को एक परमात्मा के संकल्प के आधार स्थित देखता है तथा उस परमात्मा के संकल्प से ही सम्पूर्ण भूतों का बिस्तार देखता है, उस काल में वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को प्राप्त होता जाता है ॥ २९-३० ॥

And he alone really sees, who sees all actions being performed in every way by Prakriti alone and the Self as the non-doer. The moment man perceives the diversified existance of beings as rooted in the one supreme Spirit, and the spreading forth of all beings from the same that very moment he attains Brahma [who is truth, Consciousness and Bliss solidified], (29-30)

★ ★

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः। शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते। सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥

हे अर्जुन ! अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा, शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न करता है और न लिपायमान होता है। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता है, वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ आत्मा, गुणातीत होने के कारण देह के गुणों से लिपायमान नहीं होता है ॥ ३१-३२ ॥

Arjuna, being without beginning and without attributes, this indestructible supreme Spirit, though dwelling in the body, in fact does nothing, nor gets contaminated. As the all-pervading ether is not tainted by reason of its subtlety, so seated everywhere in the body, the Self is not affected by the attributes of the body due to its attributeless character. (31-32)

★ ★

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुसा । भूत प्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥

हे अर्जुन ! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है, अर्थात् नित्य बोधस्वरूप एक आत्मा को ही सत्ता से सम्पूर्ण जडवर्ग प्रकाशित होता है। इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकार-सहित प्रकृति से छूटने के उपाय को, जो पुरुष ज्ञाननेत्रों द्वारा तत्त्व से जानते हैं वे महात्माजन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥ ३३–३४ ॥

Arjuna, as the one sun illumines this entire universe, so the one Atma [Spirit] illumines the whole Ksetra [Field]. Those who thus perceive with the eye of wisdom the difference between the Ksetra and the Ksetrajna, and the phenomenon of liberation from Prakriti with her evolutes, reach the supreme eternal Spirit. (33-34)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् । यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥
इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः । सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन ! ज्ञानों में भी अति उत्तम परमज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहूंगा, कि जिसको जानकर सब मुनिजन, इस संसार से मुक्त होकर, परम-सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं । हे अर्जुन ! इस ज्ञान को आश्रय करके अर्थात् धारण करके, मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं और प्रलयकाल में भी व्याकुल नहीं होते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि मुझ वासुदेव से भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं ॥ १–२ ॥

Shri Bhagavan said : I shall discuss once more the supreme wisdom, the best of all wisdoms, acquiring which all sages have attained highest perfection, being liberated from this mundane existenc. Those who, by practising this wisdom, have entered into My Being are not born again at the cosmic dawn nor feel disturbed even during the cosmic night. (1-2)

★ ★

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् । संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः । तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥

हे अर्जुन ! मेरी महत् ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया, संपूर्ण भूतों की योनि है अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतनरूप बीज को स्थापन करता हूं, उस जड़-चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है । तथा हे अर्जुन ! नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ को धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूँ ॥ ३–४ ॥

My primordial Nature, known as the great Brahma, is the womb of all creatures; in that womb I place the seed of all life. The creation of all beings follows from that union of Matter and Spirit, O Arjuna. Of all embodied beings that appear in all the species of various kinds, Arjuna, Prakirti or Nature is the conceiving Mother, while I am the seed-giving Father (3-4)

★ ★

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः । निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् । सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥

तथा हे अर्जुन ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं । हे निष्पाप ! उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला, निर्विकार सत्त्वगुण तो निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से अर्थात् ज्ञान के अभिमान से बांधता है ।। ५–६ ।।

Sattva, Rajas and Tamas – these three qualities born of Nature tie down the imperishable soul to the body, Arjuna. Of these Sattva, being immaculate, is illuminating and flawless, Arjuna; it binds through indentification with joy and wisdom. (5-6)

★ ★

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णा सङ्गसमुद्भवम् । तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ।।
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् । प्रमादालस्य निद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।।

तथा हे अर्जुन ! रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान, वह इस जीवात्मा को कर्मों की और उनके फल की आसक्ति से बांधता है । और हे अर्जुन ! सर्वदेहाभिमानियों के मोहने वाले तमोगुण को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान, वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है ।। ७–८ ।।

Arjuna, know the quality of Rajas, which is of the nature of passion, as born of cupidity and attachment. It binds the soul through attachment to actions and their fruit. And know Tamas, the deluder of all those who look upon the body as their own self, as born of ignorance. It binds the soul through error, sloth and sleep, Arjuna. (7-8)

★ ★

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत । ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ।।
रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत । रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।।

क्योंकि हे अर्जुन ! सत्त्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में लगाता है तथा तमोगुण तो ज्ञान को आच्छादन करके अर्थात् ढक के, प्रमाद में भी लगाता है । और हे अर्जुन ! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण होता है अर्थात् बढ़ता है तथा रजोगुण और सत्वगुण को दबा कर तमोगुण बढ़ता है वैसे ही तमोगुण और सत्वगुण को दबा कर रजोगुण बढ़ता है ।। ९–१० ।।

Sattva drives one to joy, and Rajas to action; while Tamas, clouding wisdom, incites one to error as well as sleep and sloth. Overpowering Rajas and Tamas, Arjuna, Sattva prevails; overpowering Sattva and Tamas, Rajas prevails, even so, overpowering Sattva and Rajas, Tamas prevails. (9-10)

★ ★

सर्बद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते । ज्ञानं यदा तदा विद्या द्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा । रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥

इसलिए जिस काल में इस देह में तथा अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतनता और बोध शक्ति उत्पन्न होती है, उस काल में ऐसा जानना चाहिये कि सत्वगुण बढ़ा है। और हे अर्जुन ! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ और प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक चेष्टा तथा सब प्रकार के कर्मों का स्वार्थबुद्धि से आरम्भ एवं अशान्ति अर्थात् मन की चञ्चलता और विषयभोगों की लालसा, यह सब उत्पन्न होते हैं ॥ ११-१२ ॥

When light and discernment dawn in this body, as well as in the mind and senses, then one should know that Sattva is predominant. With the preponderance of Rajas, Arjuna, greed, inactivity, undertaking of actions with an interested motive, restlessness and a thirst for enjoyment make their appearance. (11-12)

★ ★

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च । तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥
यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् । तदोत्तमविदां लोकानमलाप्रतिपद्यते ॥

तथा हे अर्जुन ! तमोगुण के बढ़ने पर अन्तःकरण और इन्द्रियों में अप्रकाश एवं कर्तव्यकर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थचेष्टा और निद्रादि अन्तःकरण की मोहिनी वृत्तियां यह सब ही उत्पन्न होते हैं। और हे अर्जुन ! जब यह जीवात्मा सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने वालों के मलरहित अर्थात् दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है ॥ १३-१४ ॥

With the growth of Tamas, Arjuna, obtuseness of the mind and senses, disinclination to perform on's obligatory duties, frivolity and stupor-all these appear. When a man dies during the preponderance of Sattva, he obtains the stainless ethereal world (heaven, etc.) attained by men of noble deeds. (13-14)

★ ★

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते । तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् । रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥

और रजोगुण के बढ़ने पर अर्थात् जिस काल में रजोगुण बढ़ता है उस काल में मृत्यु को प्राप्त होकर, कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ पुरुष कीट, पशु आदि मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है। क्योंकि सात्त्विक कर्म का तो सात्त्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है और राजस कर्म का फल दुःख एवं तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है ॥ १५-१६ ॥

Dying when Rajas predominates, he is born among those attached to actions; even so the man who has expired during the preponderance of Tamas is reborn in the species of stupid creatures, such as insects and beasts etc. The reward of a righteous act, they say is Sattvic and faultless (in the shape of joy, wisdom and dispassion etc,) sorrw is declared to be the fruit of a Rajasic act and ignorance, the fruit of a Tamasic act. (15-16)

★ ★

सत्त्वात्संजायतेज्ञानं रजसो लोभ एव च । प्रमादमोहो तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥
ऊर्ध्वं गच्छन्तिसत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः । जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्तितामसाः ॥

तथा सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से निःसन्देह लोभ उत्पन्न होता है तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है । इसलिए, सत्त्वगुण में स्थित हुए पुरुष, स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं और रजोगुण में स्थित राजस पुरुष, मध्य में अर्थात् मनुष्यलोक में ही रहते हैं एवं तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद, और आलस्यादि में स्थित हुए तामस पुरुष अधोगति को अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को प्राप्त होते हैं ॥ १७–१८ ॥

Wisdom follows from Sattva, and greed, undoubtedly; from Rajas; likewise obstinate error stupor and also ignorance follow from Tamas. Those who abide in the quality of Sattva wend their way upwards; while those of a Rajasic disposition stay in the middle, And those of a Tamasic temperament, . enveloped as thay are in the effects of the Tamoguna, sink down. (17-18)

★ ★

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति । गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥
गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् । जन्म मृत्यु जरा दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

और हे अर्जुन ! जिस काल में द्रष्टा अर्थात् समष्टि चेतन में एकीभाव से स्थित हुआ साक्षी पुरुष तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है अर्थात् गुण ही गुणों में बर्तते हैं ऐसा देखता है और तीनों गुणों से अति परे सच्चिदानन्दघन स्वरूप मुझ परमात्मा को तत्त्व से जानता है, उस काल में वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है । तथा यह पुरुष, इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप, तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हुआ परमानन्द को प्राप्त होता है ॥ १९–२० ॥

When the seer perceives no agent other than the three Gunas, and realizes Me, the supreme Spirit standing entirely beyond these Gunas, he enters into My Being. Having transcended the aforesaid three Gunas, which have caused the body, and freed from birth, death, old age and all kinds of sorrow, this soul attains supreme bliss. (19-20)

★ ★

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो । किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ।।

इस प्रकार भगवान् के रहस्ययुक्त वचनों को सुनकर अर्जुन ने पूछा कि, हे पुरुषोत्तम ! इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है ? और किस प्रकार के आचरणों वाला होता है ? तथा हे प्रभो ! मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों से अतीत होता है ? ।। २१ ।।

Arjuna said ; What are the marks of him who has risen above the three Gunas, and what his conduct ? And how, Lord, does he rise above the three Gunas ? (21)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव । न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांङ्क्षति ।।
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते । गुणावर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।।

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्री कृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन ! जो पुरुष सत्त्वगुण के कार्यरूप प्रकाशका और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्त होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है । तथा जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता है और गुण ही गुणों में बर्तते हैं ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता है ।। २२-२३ ।।

Shri Bhagavan said ; Arjuna, he who hates not light (which is born of Sattva) and activity (which is born of Rajas) and even stupor (which is born of Tamas), when prevalent, nor longs for them when they have ceased. He who, sitting like a witness, is not disturbed by the Gunas, and who, knowing that the Gunas alone move among the Gunas, remains established in identity with God, and never falls off from that state. (22-23)

★ ★

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्म काञ्चनः । तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारि पक्षयोः । सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।

और जो निरन्तर आत्मभाव में स्थित हुआ दुःख-सुख को समान समझने वाला है तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण में समानभाव वाला और धैर्यवान है तथा जो प्रिय को और अप्रिय को बराबर समझता है तथा अपनी निन्दा स्तुति में भी समान भाव वाला है । तथा जो मान और अपमान में सम है, वह सम्पूर्ण आरम्भों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है ।। २४-२५ ।।

He who is ever established in the Self, takes woe and joy alike, regards a clod of earh, a stone and a piece of gold as equal in value, is possessed of wisdom, receives the pleasant as well as the unpleasant in the same spirit, and views censure and praise alike. He who is indifferent to honour and ignominy, is alike to the cause of a friend as well as to that of an enemy, and has renounced the senses of doership in all undertakings, is said to have risen above the three Gunas. (24-25)

★ ★

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते । स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च । शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा मेरे को निरन्तर भजता है, वह इन तीनों गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिये योग्य होता है । तथा हे अर्जुन ! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृत का तथा नित्यधर्म का और अखण्ड एकरस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ अर्थात उपरोक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिकसुख, यह सब मेरे ही नाम हैं, इसलिये इनका मैं परम आश्रय हूं ॥ २६-२७ ॥

He too who constantly worships Me through the Yoga of exclusive devotion,-transcending these three Gunas, he becomes eligible for attaining Brahma. For, I am the ground of the imperishable Brahma, of immortality, of the eternal virtue and of unending immutable bliss. (26-27)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् । छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान फिर बोले कि हे अर्जुन ! आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं तथा जिसके वेद पत्ते कहे गये हैं, उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूलसहित तत्त्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है ॥ १ ॥

Shri Bhagavan said ; He who knows the peepul tree [in the form of creation]; which is said to be imperishable with its roots in the Primeval Being [God], whose stem is represented by Brahma [the Creator], and whose leaves are the Vedas, is a knower of [the intention of] the Vedas. (1)

★ ★

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥

और हे अर्जुन ! उस संसार वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढ़ी हुयी एवं विषय भोगरूप कोंपलोंवाली, देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्य योनि में कर्मों के अनुसार बांधने वाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं ॥ २ ॥

Fed by the three Gunas and having sense-objects for their tender leaves, the branches of the aforesaid tree (in the shape of the different orders of creation) extend both downwards and upwards; and its roots, which bind the soul according to its actions in the human body, are spread in all regions, higher as well as lower. (2)

★ ★

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥

परन्तु इस संसारवृक्ष का स्वरूप जैसा कहा है वैसा यहां विचार काल में नहीं पाया जाता है, क्योंकि न तो इसका आदि है और न अन्त है तथा न अच्छी प्रकार से स्थिति ही है, इसलिए

इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर ॥ ३ ॥

The nature of this tree of creation does not on mature thought turn out what it is represented to be; for it has neither beginning nor ond, nor even stability. Therefor, felling this Peepul tree, which is most firmlyrooted, with the formidable axe of dispassion. (3)

★ ★

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥

उस परमपद परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिए जिसमें गये हुए पुरुष फिर पीछे संसार में नहीं आते हैं और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, मैं उस ही आदिपुरुष नारायण के शरण हूँ इस प्रकार दृढ़ निश्चय करे ॥ ४ ॥

Thereafter a man should diligently seek for that supreme state, viz., God, having attained to which thay return no more to this world; and having fully resolved that he stands dedicated to that primeval Being (God Narayana) Himself, from whom the flow of this beginningless creation has progressed, he should dwell and meditate on Him. (4)

★ ★

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है तथा आसक्तिरूप दोष जिसने जीत लिया है, और जिनकी स्थिति निरन्तर परमात्मा के स्वरूप में है तथा जिनकी कामना अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है, वे ऐसे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन, उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

Those wise men who are free from pride and delusion, who have conquered the evil of attachment, who are in eternal union with God, whose cravings have altogther ceased and who are completely immune from all pairs of opposites going by the names of pleasure and pain, reach that supreme immortal state. (5)

★ ★

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः । यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । मनःषष्ठानी इन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

और उस स्वयम् प्रकाशमय परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है तथा जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं

आते हैं, वही मेरा परमधाम है। और हे अर्जुन ! इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई, मन सहित पांचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है ॥ ६-७ ॥

Neither the sun nor the moon nor even fire can illumine that supreme self-effulgent state, attaining to which they never return to this world. That is My supreme Abode. The eternal Jivatma in this body is a particle of My own being; and it is that alone which draws round itself the mind and the five senses, which rest in Prakriti. (6-7)

★ ★

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः । गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च । अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥

कैसे कि वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिकों का स्वामी, जीवात्मा भी जिस पहले शरीर को त्यागता है उससे इन मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके, फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है उसमें जाता है। और उस शरीर में स्थित हुआ यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचाको तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारे से ही विषयों को सेवन करता है ॥ ८-९

Even as the wind wafts scents from their seat, so too the Jivatma, which is the controller of the body etc., taking the mind and the senses from the body which it leaves behind, forthwith migrates to the body which it acquires. It is while dwelling in the senses of hearing sight, touch, taste and smell, as well as in the mind, that this Jivatma enjoys the objects of senses. (8-9)

★ ★

उत्क्रामन्तं स्थितंवापि भुञ्जानंवा गुणान्वितम् । विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्तिज्ञान चक्षुषः ॥
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् । यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥

परन्तु शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी, अज्ञानीजन नहीं जानते हैं, केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्त्व से जानते हैं। क्योंकि योगीजन भी अपने हृदय में स्थित हुए इस आत्मा को यत्न करते हुए ही तत्त्व से जानते हैं और जिन्होंने अपने अन्तःकरण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानी-जन तो यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं ॥ १०-११ ॥

The ignorant know not the soul departing from, or dwelling in, the body, or enjoying the objects of senses, i. e. even when it is connected with the three Gunas; only those endowed with the eye of wisdom are able to realize it. Striving Yogis too are able to realize this Self

enshrined in their heart. The ignorant, however, whose heart has not been purified, know not this Self in spite of their best endeavours. (10-11)

★ ★

यदादित्य गतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥
गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा । पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः । प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

और हे अर्जुन ! जो तेज सूर्य में स्थित हुआ सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान। और मैं ही पृथिवी में प्रवेश करके, अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूं और रसस्वरूप अर्थात् अमृत-मय चन्द्रमा होकर संपूर्ण ओषधियों को अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ। तथा मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ ॥ १२-१३-१४ ॥

The light in the sun, that illumines the entire solar world, and that which shines in the moon and that too which shines in the fire, know that light to be Mine. And permeating the soil, it is I who support all creatures by My vital power; and becoming the nectarine moon, I nourish all plants. Taking the form of fire lodged in the body of all creatures and united with the Prana (ingoing) and Apana (outgoing) breaths, it is I who consume the four kinds of food. (12-13-14)

★ ★

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥

और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ तथा मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूँ तथा वेदान्त का कर्ता और वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूँ ॥ १५ ॥

It is I who remain seated in the heart of all creatures as the inner controller of all; and it is I who am the source of memory, knowledge and the ratiocinative faculty. Again, I am the only object worth knowing through the Vedas; I alone am the father of the Vedanta and the knower of the Vedas too. (15)

★ ★

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥

तथा हे अर्जुन ! इस संसार में नाशवान् और अविनाशी भी यह दो प्रकार के पुरुष हैं, उनमें संपूर्ण भूतप्राणियों के शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है, तथा उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है कि जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण, पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा ऐसे कहा गया है ॥ १६-१७ ॥

The perishable and the imperishable too--these are the two kinds of Purusas in this world. Of these, the bodies of all beings are spoken of as the perishable; while the Jivatma or the embodied soul is called imperishable. The Supreme person is yet other than these, who, having entered all the three worlds, upholds and maintains all, and has been spoken of as the imperishable Lord and the Supreme Spirit. (16-17)

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥
यो मामेवसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् । स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ । एतबुद्ध्वाबुद्धिमानस्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥

क्योंकि मैं नाशवान्, जडवर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूँ और माया में स्थित अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ, इसलिए लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ । हे भारत ! इस प्रकार तत्त्व से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है । हे निष्पाप अर्जुन ! ऐसे यह अति रहस्य युक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्त्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो जाता है अर्थात् उसको और कुछ भी करना शेष नहीं रहता ॥ १८-१९-२० ॥

Since I am wholly beyond the perishable world of matter of Ksetra, and am superior even to the imperishable soul, hence I am known as the Purusottama in the world as well as in the Vedas. Arjuna the wise man who thus realizes Me as the Supreme person,--knowing all, he constantly worships Me (the all-pervading Lord) with his whole being. Arjuna, this most esoteric teaching has thus been imparted by Me; grasping it in essence man becomes wise and his mission in life is accomplished. (18-19-20)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥



अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः । दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् । दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले, हे अर्जुन ! दैवी सम्पदा जिन पुरुषों को प्राप्त है तथा जिनको आसुरी सम्पदा प्राप्त है उनके लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूँ, उनमें से सर्वथा भय का अभाव, अन्तःकरण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान तथा इन्द्रियों का दमन, भगवत् पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण एवं वेदशास्त्रों के पठन-पाठन पूर्वक, भगवत् नाम और गुणों का कीर्तन तथा स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन करना एवं शरीर और इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता । तथा मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा यथार्थ और प्रिय भाषण अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग एवं अन्तःकरण की उपरामता अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव और किसी की भी निन्दादि न करना तथा सब भूतप्राणियों में हेतु रहित दया, इन्द्रियों के विषयों के साथ संयोग होने पर भी आसक्ति का न होना और कोमलता तथा लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव ॥ १-२ ॥

Absolute fearlessness, perfect purity of mind, constant fixity in the Yoga of meditation for the sake of Self-Realization, and even so charity in its Sattvic form, control of the senses, worship of God and other deities as well as of one's elders including the performence of Agnihotra (pouring oblations into the sacred fire) and other sacred duties, study and teaching of the Vedas and other sacred books as well as the chanting of God's names and praises, suffering hardships for the discharge of one's sacred obligations and straightness of mind as well as of the body and senses; Non-violence in thought word and deed truthfulness and geniality of speech; absence of anger even on provocation, disclaiming doership in respect of actions, quietude or composure of mind, abstaining from malicious gossip, compassion towards all creatures, absence of attachment to the objects of senses even during their contact with the senses, mildness, a sense of shame in transgressing against the scriptures or usage, and abstaining from frivolous pursuits; (1-2)

★ ★

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता । भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च । अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥

तथा तेज, क्षमा, धैर्य और बाहर और भीतर की शुद्धि एवं किसी में भी शत्रुभाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव, यह सब तो हे अर्जुन ! दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं। और हे पार्थ ! पाखण्ड, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान भी यह सब आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं ॥ ३-४ ॥

Sublimity, forbearance, fortitude, external purity, bearing enmity to none and absence of self-esteem — these are the marks of him who is born with the divine gifts, Arjuna. Hypocrisy, arrogance and pride, and anger, sternness and ignorance too-these are the marks of him who is born with demon'ac properties. (3-4)

★ ★

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता । मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च । दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥

उन दोनों प्रकार की सम्पदाओं में दैवी सम्पदा तो मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा बांधने के लिए मानी गयी है, इसलिए हे अर्जुन ! तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी सम्पदा को प्राप्त हुआ है। और हे अर्जुन ! इस लोक में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के माने गये हैं, एक तो देवों के जैसा और दूसरा असुरों के जैसा, उनमें देवों का स्वभाव ही विस्तार पूर्वक कहा गया है, इसलिये अब असुरों के स्वभाव को भी विस्तार पूर्वक मेरे से सुन ॥ ५-६ ॥

The divine gift has been recognized as conducive to liberation, and the demoniac gift as conducive to bondage. Grieve not, Arjuna; for you are born with the divine endowment. There are only tow types of men in this world, Arjuna,-the one possessing a divine nature and the other possessing a demoniac disposition. Of these, the type possessing a divine nature has been dealt with at length; now hear in detail from Me about the type possessing demoniac disposition. (5-6)

★ ★

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः । न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् । अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥

हे अर्जुन ! आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य कार्य में प्रवृत्त होने को और अकर्तव्यकार्य से निवृत्त होने को भी नहीं जानते हैं, इसलिये उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है। तथा वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहते हैं कि जगत् आश्रयरहित और सर्वथा झूठा एवं बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है, इसलिए केवल भोगों को भोगने के लिए ही है, इसके सिवा और क्या है ? ॥ ७-८ ॥

Men possessing a demoniac disposition know not what is right activity and what is right abstinence from activity. Hence they possess neither purity (external of internal) nor

good conduct nor even truthfulness. Men possessing a demoniac disposition say this world is without any foundation, absolutely unreal and godless, brought forth by mutual union of the male and female and hence conceived in lust; what else than this ? (7-8)

★ ★

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः । प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः । मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥

इस प्रकार इस मिथ्या ज्ञान को अवलम्बन करके नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका तथा मन्द है बुद्धि जिनकी, ऐसे वे सबका अपकार करने वाले क्रूर कर्मी मनुष्य केवल जगत् का नाश करने के लिये ही उत्पन्न होते हैं । और वे मनुष्य दम्भ, मान और मद से युक्त हुये किसी प्रकार भी पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर तथा अज्ञान से मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुये संसार में बर्तते हैं ॥ ९–१० ॥

Clinging to this false view these slow-witted men of a vile disposition and terrible deeds, these enemies of mankind, prove equal only to the destruction of the universe. Cherishing insatiable desires and embracing false doctrines through ignorance, these men of impure conduct move in this world, full of hypocrisy, pride and arrogance. (9-10)

★ ★

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः । कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः । ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥

तथा वे मरणपर्यन्त रहने वाली अनन्त चिन्ताओं को आश्रय किये हुये और विषयभोगों के भोगने में तत्पर हुये एवं इतना मात्र ही आनन्द है ऐसे मानने वाले हैं । इसलिये आशारूप सैकड़ों फांसियों से बंधे हुये और काम-क्रोध के परायण हुये विषयभोगों की पूर्ति के लिये अन्याय पूर्वक धनादिक बहुत से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं ॥ ११–१२ ॥

Giving themselves up to innumerable cares ending only with death, they remain devoted to the enjoyment of sensuous pleasures and are positive in their belief that this is the highest limit of joy. Held in bondage by hundreds of ties of expectation and wholly giving themselves up to lust and anger, they strive to amass by unfair means hoards of money and other objects for the enjoyment of sensuous pleasures. (11-12)

★ ★

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् । इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि । ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥

और उन पुरुषों के विचार इस प्रकार के होते हैं कि मैंने आज यह तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह होवेगा । तथा वह

शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा तथा मैं ईश्वर और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं और मैं सब सिद्धियों से युक्त एवं बलवान और सुखी हूँ ॥ १३–१४ ॥

They say to themselves, "This much has been secured by me today and now I shall realize this ambition. So much wealth is already with me and yet again this shall be mine. That enemy has been slain by me and I shall kill those others too. I am the lord of all, the enjoyer of all power; I am endowed with all supernatural powers, and am mighty and happy. (13-14)

★ ★

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्तिसदृशोमया । यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

तथा मैं बड़ा धनवान और बड़े कुटुम्बवाला हूँ । मेरे समान दूसरा कौन है, मैं यज्ञ करूंगा, दान दूंगा, हर्ष को प्राप्त होऊंगा, इस प्रकार के अज्ञान से मोहित हैं । इसलिये वे अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले अज्ञानीजन मोह रूप जाल में फंसे हुए एवं विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त हुए महान अपवित्र नरक में गिरते हैं ॥ १५–१६ ॥

I am wealthy and own a large family; who else is like unto me ? I will sacrifice to gods, will give alms, I will make merry. Thus blinded by ignorance, enveloped in the mesh of delusion and addicted to the enjoyment of sensuous pleasures, their mind bewildered by numerous thoughts, these men of a devilish disposition fall into the foulest hell. (15-16)

★ ★

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः । यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः । मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥

तथा वे अपने आप को ही श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष धन और मान के मद से युक्त हुए, शास्त्र विधि से रहित केवल नाममात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से यजन करते हैं । तथा अहंकार बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादिक के परायण हुए एवं दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करने वाले हैं ॥ १७–१८ ॥

Intoxicated by wealth and honour, those self-conceited and haughty men worship God through nominal sacrifices for ostentation without following the sacred rituals. Given over to egotism, brute force, arrogance. lust and anger etc. and calumnizing others, they hate Me (the inner controller of all) dwelling in their own bodies as well all in those of others. (17-18)

★ ★

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् । क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि । मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

ऐसे उन द्वेष करने वाले, पापाचारी और क्रूर कर्मी नराधमों को मैं संसार में बारम्बार आसुरी योनियों में ही गिराता अर्थात् शूकर, कूकर आदि नीच योनियों में ही उत्पन्न करता हूँ । इसलिये हे अर्जुन ! वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए मेरे को न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकों में पड़ते हैं ।। १९–२० ।।

These haters, sinful, cruel and vilest among men, I cast again and again into demoniacal wombs in this world. Failing to reach Me, Arjuna, these stupid soul are born life after life in demoniac wombs and then verily sink down to a still lower plane. (19–20)

★ ★

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः । आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ।।

और हे अर्जुन ! काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं अर्थात् अधोगति में ले जाने वाले हैं इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिये । क्योंकि हे अर्जुन ! इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हुआ अर्थात् काम, क्रोध और लोभ आदि विकारों से छूटा हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है इससे वह परम गति को जाता है अर्थात् मेरे को प्राप्त होता है ।। २१–२२

Desire, anger and greed – this triple gate of hell brings about the ruination of the soul. Therefore, one should, avoid all these three. Freed from these three gates of hell, man works his own salvation and thereby attains the supreme goal i.e., God. (21-22)

★ ★

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ । ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

और जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से बर्तता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न परम गति को तथा न सुख को ही प्राप्त होता है । इसमे तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जान कर तू शास्त्र विधि से नियत किये हुये कर्म को ही करने के लिये योग्य है ।। २३–२४ ।।

Having cast aside the injunctions of the scriptures, he who acts in an arbitrary way according to his own sweet will neither attains perfection nor tho supreme goal nor even happiness. Therefore, the scripture alone is your guide in determining what should be done and what should not be done. Knowing this; you ought to perform only such action as is ordained by the scriptures. (23-24)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

—॥—

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः । तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुन कर अर्जुन बोला, हे कृष्ण ! जो मनुष्य शास्त्रविधि को त्याग कर केवल श्रद्धा से युक्त हुए देवादिकों का पूजन करते हैं उनकी स्थिति फिर कौन-सी है ? क्या सात्त्विकी है ? अथवा राजसी या तामसी है ? ॥ १ ॥

Arjuna said : Those who, endowed with faith, worship gods and others casting aside the injunctions of the scriptures, where do they stand, Krishna,–in Sattva, Rajas or Tamas ?

★ ★

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा । सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत । श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर, श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन ! मनुष्यों की वह बिना शास्त्रीय संस्कारों के केवल स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्त्विकी और राजसी तथा तामसी तीन प्रकार की होती है, उसको तू मेरे से सुन । हे भारत सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है तथा यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही है अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है, वैसा ही उसका स्वरूप है ॥ २–३ ॥

Sri Bhagavan said ; that untutored innate faith of men is of three kinds--Sattvic and Rajasic and Tamasic. Hear of it from Me. The faith of all men conforms to their mental constitution, Arjuna. This man consists of faith; whatever the nature of his faith; he is verily that. (2-3)

★ ★

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः । प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः । दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥

उनमें सात्त्विक पुरुष तो देवों को पूजते हैं और राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को पूजते हैं तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं । और हे अर्जुन ! जो मनुष्य

शास्त्रविधि से रहित केवल मनोकल्पित घोर तप को तपते हैं तथा दम्भ और अहंकार से युक्त एवं कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं ॥ ४–५ ॥

Men of a Sattvic disposition worship gods; those of a Rajasic temperament worship demigods and demons; while others, who are men of a Tamasic dispostion, worship the spirit of the dead and groups of ghosts. Men who practise dire penance of an arbitrary type not sanctioned by the scriptures, and who are full of hypocrisy and agotism and are obsessed with desire, attachment and pride of power. (4-5)

★ ★

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान् ॥
आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः। यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥

तथा जो शरीर रूप से स्थित भूत समुदाय को अर्थात् शरीर, मन और इन्द्रियादिकों के परिणत हुए आकाशादि पांच भूतों को और अन्तःकरण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को भी कृश करने वाले हैं उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाले जान। और हे अर्जुन! जैसे श्रद्धा तीन प्रकार की होती है वैसे ही भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकार के होते हैं उनके इस भिन्न-भिन्न भेद को तू मेरे से सुन ॥ ६–७ ॥

And who emaciate the elements constituting their body as well as Me, the supreme Spirit, dwelling in their heart,-know these senseless people to have a demoniac disposition. Food also, which is agreeable to different men according to their innate disposition, is of three kinds. And likewise sacrifice, penance and charity too are of three kinds each; hear their distinction as follows. (6-7)

★ ★

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रस युक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय, आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ तो सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। और कडुवे, खट्टे लवण युक्त और अति गरम तथा तीक्ष्ण, रूखे और दाहकारक एवं दुःख, चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ राजस पुरुष को प्रिय होते हैं ॥ ८–९ ॥

Foods which promote longevity, intelligence, vigour, health, happiness and cheerfulness, and which are sweet, bland, substantial and naturally agreeable, are dear to the Sattvic type

of men. Foods which are bitter, acid, salty, overhot, pungent, dry and burning, and which cause suffering, grief and sickness, are dear to the Rajasic type of men. (8-9)

★ ★

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् । उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥
अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते । यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥

तथा जो भोजन अधपका रस रहित और दुर्गन्ध युक्त एवं बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है । और हे अर्जुन ! जो यज्ञ शास्त्रविधि से नियत किया हुआ है तथा करना ही कर्तव्य है ऐसे मन को समाधान करके फल को न चाहने वाले पुरुषों द्वारा किया जाता है, वह यज्ञ सात्त्विक है ॥ १०–११ ॥

Food which is half-cooked or half-ripe, insipid, putrid, stale and polluted, and which is impure too, is dear to men of a Tamasic disposition. The sacrifice which is offered, as ordained by scriptural injunctions, by men who expect no return and who believe that such sacrifices must be performed, is Sattvic in character. (10-11)

★ ★

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् । इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥

और हे अर्जुन ! जो यज्ञ, केवल दम्भाचरण के ही लिए अथवा फल को उद्देश्य रखकर किया जाता है, उस यज्ञ को तू राजस जान । तथा शास्त्रविधि से हीन और अन्नदान से रहित एवं बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किये हुए यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं ॥ १२–१३ ॥

That sacrifice, however, which is offered for the sake of mere show or even with an eye to its fruit, know it to be Rajasic, Arjuna. A sacrifice wich has no respect for scriptural injunctions, in which no food is offered, and no sacrificial fees are paid, which is without sacred chant and devoid of faith, is said to be Tamasic. (12-13)

★ ★

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् । ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् । स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

तथा हे अर्जुन ! देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, यह शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है । तथा जो उद्वेग को न करने वाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है और जो वेद-शास्त्रों के पढ़ने का एवं परमेश्वर के नाम जपने का अभ्यास है, वह निःसन्देह वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है ॥ १४–१५ ॥

Worsbip of gods, the Brahmans, one's elders and wise men, purity, straightness, continence and harmlessness-this is called bodily penance. Words which cause no annoyance to others and are truthful, agreeable and wholesome, as well as the study of the Vedas and other shastras and the practice of repetition of the Divine Name—this is known as the austerity of speech. (14-15)

★ ★

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः । भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥
श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः । अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥

तथा मन की प्रसन्नता और शान्तभाव एवं भगवत्-चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अन्तःकरण की पवित्रता, ऐसे यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है। परन्तु हे अर्जुन ! फल को न चाहने वाले निष्कामी योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा में किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकार के तप को तो सात्त्विक कहते हैं ॥ १६–१७ ॥

Cheerfulness of mind, placidity, habit of contemplation of God, control of the mind and perfect purity of inner feelings—all this is called austerity of the mind. This threefold penance performed with supreme faith by Yogis expecting no return is called Sattvic. (16-17)

★ ★

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् । क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः । परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥

जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिये अथवा केवल पाखण्ड से ही किया जाता है, वह अनिश्चित और क्षणिक फल वाला तप यहां राजस कहा गया है। और जो तप मूढ़ता पूर्वक हठ से, मन से, वाणी और शरीर की पीड़ा सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिये किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है ॥ १८–१९ ॥

The penance which is performed for the sake of renown, honour and worship as well as for any other selfish gain either in all sincerity or by way of ostentation, and yields an uncertain and momentary fruit, has been spoken of here as Rajasic. Austerity which is practised through perversity and is accompanied with self-mortification or is intended to harm others, such austerity has been declared as Tamasic. (18-19)

★ ★

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे । देशे काले च पात्रे तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः । दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥

और हे अर्जुन ! दान देना ही कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर, प्रयुत्कार न करने वालों के लिये दिया जाता है, वह दान तो सात्त्विक कहा

गया है। और जो दान क्लेश पूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अर्थात् बदले से अपना सांसारिक कार्य सिद्ध करने की आशा से अथवा फल को उद्देश्य रख कर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है ॥ २०-२१ ॥

A gift which is bestowed with a sense of duty on one who is no benefactor when a fit place, suitable time and a deserving person are available, that gift has been pronounced as Sattvic. A gift which is bestowed in a grudging spirit and with the object of getting a service in return or in the hope of obtaining a reward, is called Rajasic. (20-21)

★ ★

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥
ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः । ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

और जो दान बिना सत्कार किये, अथवा तिरस्कार पूर्वक अयोग्य देश काल में कुपात्रों के लिये अर्थात् मद्य-मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं के खाने वालों एवं चोरी जारी आदि नीच कर्म करने वालों के लिये दिया जाता है वह दान तामस कहा गया है। और हे अर्जुन ! ॐ, तत् सत् ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानन्दघन ब्रह्म का नाम कहा है उसी से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये हैं ॥ २२-२३ ॥

A gift which is made without good grace and in a disdainful spirit out of time and place and to undeserving persons is said to be Tamasic. OM, TAT and SAT--this has been declared as the threefold appellation of Absolute, who is Truth, Consciousness and Bliss solidified. By that were the Brahmans and the Ve das as well as sacrifices were created at the cosmic dawn. (22-23)

★ ★

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः । प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः । दानक्रियाश्च विविधाःक्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥

इसलिए वेद को कथन करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत की हुई यज्ञ दान और तपरूप क्रियायें सदा ॐ, ऐसे इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं। और तत् नाम से कहे जाने वाले परमात्मा का ही यह सब है, ऐसे इस भाव से फल को न चाहकर, नाना प्रकार की यज्ञ, तपरूप क्रियायें तथा दानरूप क्रियायें कल्याण की इच्छावाले पुरुषों द्वारा की जाती है ॥ २४-२५ ॥

Therefore; acts of sacrifice, charity and austerity as enjoined by sacred precepts are always commenced by noble souls given to the recitation of Vedic chants with utterance of the divine name OM. With the idea that all this belongs to God, who is denoted by the

appellation TAT, acts of sacrifice and austerity as well as acts of charity of various kinds are performed by the seekers of blessedness expecting no return for them. (24-25)

★ ★

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते । प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते । कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् । असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

और सत् ऐसे यह परमात्मा का नाम सत्य भाव में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ ! उत्तम कर्म में भी सत् शब्द प्रयोग किया जाता है । तथा यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है, वह भी सत् है, और उस परमात्मा के निमित्त किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत् कहा जाता है । और हे अर्जुन ! बिना श्रद्धा के होमा हुआ हवन तथा दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह समस्त असत् कहा जाता है, इसलिए वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के पीछे ही लाभदायक है, अतः मनुष्य को चाहिये कि सच्चिदानन्दघन परमात्मा के नाम का निरन्तर चिन्तन करता हुआ निष्काम भाव से, केवल परमेश्वर के लिए शास्त्रविधि से नियत किये हुए कर्मों का परम श्रद्धा और उत्साह के सहित आचरण करे ॥ २६–२७–२८ ॥

The name of God, SAT is employed in the sense of truth and goodness. And the word SAT is also used in the sense of a praiseworthy act, Arjuna. And steadfastness in sacrifice austerity and charity is likewise spoken of as 'Sat', and action for the sake of God is verily termed as 'Sat'. An oblation which is offered, a gift given, an austerity practised, and whatever good deed is performed, without faith, it is all termed as naught; therefore, it is of no avail here or hereafter. (26-27-28)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवत्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



अथाष्टदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् । त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥

उसके उपरान्त अर्जुन बोला, हे महाबाहो ! हे अन्तर्यामिन् ! हे वासुदेव ! मैं संन्यास और त्याग के तत्त्व को पृथक-पृथक जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

Arjuna said : O mighty-armed Sri Krishna, O inner controller of all, O Slayer of Keshi, I wish to know severally the truth of Sannyasa and Tyaga. (1)

★ ★

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः । सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः । यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन ! कुछ ही पण्डितजन तो काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास कहते हैं और कितने ही विचार कुशल पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग कहते हैं । तथा कई एक विद्वान ऐसे कहते हैं कि कर्म सभी दोष युक्त हैं, इसलिये त्यागने योग्य हैं और दूसरे विद्वान ऐसा कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं ॥ २–३ ॥

Sbri Bhagavan said ; Some sages understand Sannyasa as the giving up of all actions motivated by desire; and other thinkers declare that Tyaga consists in relinquishing the fruit of all actions. Some wise men declare that all action contains a measure of evil, and is therefore worth giving up; while others say that acts of sacrifice, charity and penance are not worth shunning. (2-3)

★ ★

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम । त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् । यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

परन्तु हे अर्जुन ! उस त्याग के विषय में तू मेरे निश्चय को सुन, हे पुरुष श्रेष्ठ ! वह त्याग सात्त्विक, राजस और तामस ऐसे तीनों प्रकार का ही कहा गया है । तथा यज्ञ, दान और तप

कर्म त्यागने के योग्य नहीं है किन्तु वह निःसन्देह करना कर्तव्य है क्योंकि यज्ञ, दान और तप यह तीनों ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं ।। ४—५ ।।

Of Sannyasa and Tyaga, first hear My conclusion on the subject of Tyaga, Arjuna; for Tyaga, O tiger among men, has been declared to be of three kinds—Sattvic, Rajasic and Tamasic. Acts of sacrifice, charity and penance are not worth giving up; they must be performed. For sacrifice, charity and penance—all these are purifiers of wise men. (4-5)

★ ★

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च । कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ।।
नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते । मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ।।

इसलिये हे पार्थ ! यह यज्ञ, दान और तप रूप कर्म तथा और भी संपूर्ण श्रेष्ठ कर्म आसक्ति को और फलों को त्याग कर अवश्य करने चाहिये ऐसा मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है । हे अर्जुन ! नियत कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है, इसलिये मोह से उसका त्याग करना तामस त्याग कहा गया है ।। ६—७ ।।

Hence these acts of sacrifice, charity and penance, and all other acts too, must be performed without attachment and hope of reward : this is My considered and supreme verdict, Arjuna. (Prohibited acts and those that are motivated by desire should no doubt be given up). But it is not advisable to abandon a prescribed duty. Its abandonment through ignorance has been declared as Tamasic. (6-7)

★ ★

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् । स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ।।
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन । सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ।।

और यदि कोई मनुष्य जो कुछ कर्म है वह सब ही दुःख रूप है, ऐसे समझ कर शारीरिक क्लेश के भय से कर्मों का त्याग कर दे तो वह पुरुष उस राजस त्याग को करके भी त्याग के फल को प्राप्त नहीं होता है अर्थात् उसका वह त्याग करना व्यर्थ ही होता है । और हे अर्जुन ! कर्म करना कर्तव्य है ऐसे समझकर, जो शास्त्र विधि से नियत किया हुआ कर्तव्य कर्म आसक्ति को और फल को त्याग कर किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है अर्थात् कर्तव्य कर्मों को स्वरूप से न त्याग कर उनमें जो आसक्ति और फल का त्यागना है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है ।। ८—९ ।।

Should anyone give up his duties for fear of physical strain, thinking that all action is verily of the nature of discomfort, — practising such Rajasic form of renunciation, he reaps not the fruit of renunciation. A prescribed duty which is performed simply because it has to be preformed, giving up attachment and fruit, that alone has been recognized as the Sattvic form of renunciation. (8-9)

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते । त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः । यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥

और हे अर्जुन ! जो पुरुष अकल्याणकारक कर्म से तो द्वेष नहीं करता और कल्याण कारक कर्म में आसक्त नहीं होता है, वह शुद्ध सत्त्वगुण से युक्त हुआ पुरुष संशय रहित ज्ञानवान् और त्यागी है । क्योंकि देहधारी पुरुष के द्वारा संपूर्णता से सब कर्म त्यागे जाने को शक्य नहीं है इससे जो पुरुष कर्मों के फल का त्यागी है, वह त्यागी कहा जाता है ॥ १०-११ ॥

He who shrinks not from action which does not bring lasting happiness, nor gets attached to that which is conducive to blessedness,—imbued with the quality of goodness, he has all his doubts resolved, is intelligent and a man of true renunciation. Since all actions cannot be given up in their entirety by anyone possessing a body, he alone who renounces the fruit of actions is called a man of renunciation. (10-11)

★ ★

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् । भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्
पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे । सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्

तथा सकामी पुरुषों के कर्म का ही अच्छा, बुरा और मिला हुआ ऐसे तीन प्रकार का फल मरने के पश्चात भी होता है और त्यागी पुरुषों के कर्मों का फल किसी काल में भी नहीं होता, क्योंकि उनके द्वारा होने वाले कर्म वास्तव में कर्म नहीं हैं । और हे महाबाहो ! संपूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिये अर्थात् संपूर्ण कर्मों के होने में यह पांच हेतु सांख्य सिद्धान्त में कहे गये हैं, उनको तू मेरे से भली प्रकार जान ॥ १२-१३ ॥

Welcome, unwelcome and mixed - threefold, indeed, is the fruit that accrues hereafter from the actions of the unrenouncing. But there is none ever for those who have renounced. In the branch of learning known by the name of Sankhya, which prescribes means for neutralizing all actions, these five factors have been mentioned as contributory to the accomplishment of all actions, know them from Me, Arjuna. (12-13)

★ ★

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥
शरीर वाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभते नरः । न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥

हे अर्जुन ! इस विषय में आधार और कर्ता तथा भिन्न-भिन्न करण और नाना प्रकार की न्यारी-न्यारी चेष्टा एवं वैसे ही पांचवां हेतु दैव कहा गया है । क्योंकि मनुष्य मन. वाणी और शरीर से शास्त्र के अनुसार अथवा विपरीत भी जो कुछ कर्म आरम्भ करता है उसके यह पांचों ही कारण हैं ॥ १४-१५ ॥

The following are the factors operating towards the accomplishment of actions, viz., the seat of action and the agent, the organs of different kinds and the separate movements of divergent types; and the fifth is Daiva or destiny. These five are the contributory causes of whatever actions, right or wrong, man performs with the mind, speech and body. (14–15)

★ ★

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः । पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥
यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते । हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते

परन्तु ऐसा होने पर भी जो पुरुष अशुद्ध बुद्धि होने के कारण, उस विषय में केवल शुद्ध-स्वरूप आत्मा को कर्त्ता देखता है, वह मलिन बुद्धि वाला अज्ञानी यथार्थ नहीं देखता है । हे अर्जुन ! जिस पुरुष के अन्तःकरण में मैं कर्त्ता हूँ ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और संपूर्ण कर्मों में लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों को मार कर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बन्धता है ॥ १६–१७ ॥

Notwithstanding this, however, he who, having an impure mind, regards the absolute, taintless Self alone as the doer, that man of perverse understanding does not view aright He whose mind is free from the sense of doership, and whose reason is not tainted by worldly objects and activities, does not really slay. even having slaughtered all these creatures, nor is bound by sin. (16–17)

★

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना । करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥
ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः । प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥

तथा हे भारत ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह तीनों तो कर्म के प्रेरक हैं अर्थात् इन तीनों के संयोग से तो कर्म में प्रवृत होने की इच्छा उत्पन्न होती है और कर्त्ता करण और क्रिया यह तीनों कर्म के संग्रह है अर्थात् इन तीनों के संयोग से कर्म बनता है । उन सब में ज्ञान और कर्म तथा कर्त्ता भी गुणों के भेद से सांख्य शास्त्र में तीन-तीन प्रकार से कहे गये हैं, उनको भी तू मेरे से भली प्रकार सुन ॥ १८–१९ ॥

The knower, knowledge and the object of knowledge – these three motivate action. Even so the doer, the organs and activity – these are the three constituents of action. In the branch of knowledge dealing with the Gunas or modes of Prakriti, knowledge and action as well as the doer have been declared to be of three kinds according to the Guna which predominates in each; hear them too duly from Me. (18–19)

★ ★

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते । अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् । वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्

हे अर्जुन ! जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक-पृथक सब भूतों में, एक अविनाशी परमात्मभाव को विभाग रहित समभाव से स्थिति देखता है, उस ज्ञान को तू सात्त्विक जान। और जो ज्ञान एक अर्थात् जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य संपूर्ण भूतों में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक भावों को भिन्न-भिन्न करके जानता है, उस ज्ञान को तू राजस जान ।। २०-२१ ।।

That by which man perceives one imperishable divine existence as undivided and equally present in all individual beings, know that knowledge to be Sattvic. That, however, by which man cognizes many existences of various kinds as apart from one another in all beings, know that knowledge to be Rajasic. (20-21)

★ ★

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् । अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।।
नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् । अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ।।

और जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीर में ही संपूर्णता के सदृश आसक्त है अर्थात् जिस विपरीत ज्ञान के द्वारा मनुष्य एक क्षणभंगुर नाशवान शरीर को ही आत्मा मान कर उसमें सर्वस्व की भाँति आसक्त रहता है तथा जो बिना युक्ति वाला तत्त्व अर्थ से रहित और तुच्छ है वह ज्ञान तामस कहा गया है। तथा हे अर्जुन ! जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया हुआ और कर्त्तापन के अभिमान से रहित, फल को न चाहने वाले पुरुष द्वारा, बिना राग द्वेष से किया हुआ है, वह कर्म तो सात्त्विक कहा जाता है ।। २२-२३ ।।

Again, that knowledge which clings to one body as if it were the whole, and which is irrational, has no real object and is trivial has been declared as Tamasic. That action which is ordained by the scriptures and is not accompanied by the sense of doership, and has been done without any partiality or prejudice by one who seeks no return, is called Sattvic. (22-23)

★ ★

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः । क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।।
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् । मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।।

और जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त है तथा फल को चाहने वाले और अहंकार युक्त पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है। तथा जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचार कर केवल अज्ञान से आरम्भ किया जाता है, वह कर्म तामस कहा जाता है ।। २४-२५ ।।

That action, however, which involves much strain and is performed by one who seeks enjoyments or by a man full of egotism, has been spoken of as Rajasic. That action which

is undertaken through sheer ignorance, without counting the upshot, loss to oneself, injury to others and one's own capacity, is declared as Tamasic. (24-25)

★ ★

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः । सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विकउच्यते ॥
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः । हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥

तथा हे अर्जुन ! जो कर्त्ता आसक्ति से रहित और अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य और उत्साह से युक्त एवं कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष-शोकादि विकारों से रहित है वह कर्त्ता तो सात्त्विक कहा जाता है । और जो आसक्ति युक्त कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला, अशुद्धाचारी और हर्ष शोक से लिपायमान है, वह कर्त्ता राजसी कहा गया है ॥ २६-२७ ॥

Free from attachment, unegotistic, endowed with firmness and vigour and unswayed by success and failure—such a doer is said to be Sattvic. The doer who is full of attachment, seeks the fruit of actions and is greedy, and who is oppressive by nature and of impure conduct, and is affected by joy and sorrow, has been called Rajasic. (26-27)

★ ★

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः । विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥
बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु । प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥

तथा जो विक्षेपयुक्तचित्तवाला, शिक्षा से रहित, घमण्डी, धूर्त और और दूसरे की आजीविका का नाशक एव शोक करने के स्वभाव वाला, आलसी और दीर्घ सूत्री है वह कर्त्ता तामस कहा जाता है । तथा हे अर्जुन ! तू बुद्धि का और धारण शक्ति का भी गुणों के कारण तीन प्रकार का भेद संपूर्णता से विभाग पूर्वक मेरे से कहा हुआ सुन ॥ २८-२९ ॥

Lacking piety and self-control, uncultured, arrogant, deceitful. inclined to rob others of their livelihood, slothful, down-hearted and procrastinating, such a doer is called Tamasic. Now hear, Arjuna, the threefold division, based on the predominance of each Guna, of Buddhi and Dhrti also, which is being told by Me in full one by one. (28-29)

★ ★

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये । बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च । अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥

हे पार्थ ! प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को एवं भय और अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को जो बुद्धि तत्त्व से जानती है, वह बुद्धि तो सात्त्विकी है । और

हे पार्थ ! जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य, धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता है, वह बुद्धि राजसी है ॥ ३०-३१ ॥

The intellect which correctly determines the paths of activity and renunciation, what ought to be done and what should not be done, what is fear and what is fearlessness, and what is boundage and what is liberation, that intellect is Sattvic. The intellect by which man does not truly perceive what is Dharma and what is Adharma, what ought to be done and what should not be done,—that intellect is Rajasic. (30-31)

★ ★

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता । सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥
धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः । योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी॥

और हे अर्जुन! जो तमोगुण से आवृत्त हुई बुद्धि अधर्म का धर्म जैसा मानती है तथा और भी संपूर्ण अर्थों को विपरीत ही मानती हैं, वह बुद्धि ही तामसी है । और हे पार्थ ! ध्यान योग के द्वारा जिस अव्यभिचारिणी धारणा से मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह धारणा तो सात्त्विकी है ॥ ३२-३३ ॥

The intellect which imagines even Adharma, to be Dharma, and sees all other things upside-down- wrapped in ignorance, that intellect is Tamasic, Arjuna. The unwavering firmness by which man controls through the Yoga of meditation the functions of the mind, the vital airs and the senses—that firmness, Arjuna, is Sattvic. (32-33)

★ ★

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन । प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च । न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥

और हे पृथापुत्र अर्जुन ! फल की इच्छा वाला मनुष्य अति आसक्ति से जिस धारणा के द्वारा धर्म, अर्थ और कामों को धारण करता है, वह धारणा राजसी है । तथा हे पार्थ ! दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारणा के द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता और दुःख को एवं उन्मत्तता को भी नहीं छोड़ता है अर्थात् धारण किये रहता है, वह धारणा तामसी है ॥ ३४-३५ ॥

The Dhriti, however, by which the man seeking a reward for his actions clutches with extreme fondness virtue; earthly possessions and worldly enjoyments, - that Dhriti is Rajasic, Arjuna. The firmness by which an evil-minded person refuses to shake off, i. e., clings to, sleep, fear, anxiety, sorrow and vanity as well, that firmness is Tamasic. (34-35)

★ ★

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ । अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् । तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥

हे अर्जुन ! अब सुख भी तू तीन प्रकार का मेरे से सुन हे भरतश्रेष्ठ ! जिस सुख में साधक पुरुष भजन, ध्यान और सेवादि के अभ्यास से रमण करता है और दुःखों के अन्त को प्राप्त होता है। वह सुख प्रथम साधना के आरम्भ में यद्यपि विष के सदृश भासता है परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है, इसलिये जो भगवत् विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ सुख है, वह सात्त्विक कहा गया है ॥ ३६-३७ ॥

Now hear from Me the threefold joy too. That in which the striver finds enjoyment through practice of adoration, meditation and service to God etc., and whereby he reaches the end of sorrow,—such a joy, though appearing as poison in the beginning, tastes like nectar in the end; hence that joy, born as it is of the placidity of mind brought about by meditation on God, has been declared as Sattvic. (36-37)

★ ★

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् । परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥
यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः । निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

और जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है, वह यद्यपि भोग काल में अमृत के सदृश भासता है, परन्तु परिणाम में विष के सदृश है, इसलिये वह सुख राजस कहा गया है। तथा जो सुख भोग काल में और परिणाम भी आत्मा को मोहने वाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा गया है ॥ ३८-३९ ॥

The delight which follows from the contact of the senses with their objects is eventually poison-like, though appearing at first as nectar; hence it has been spoken of as Rajasic. That which stupefies the self during its enjoyment as well as in the end, - derived from sleep, indolence and obstinate error; such delight has been called Tamasic. (38-39)

★ ★

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः । सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप । कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

और हे अर्जुन ! पृथिवी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में, ऐसा वह कोई भी प्राणी नहीं है कि जो इन प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुणों से रहित हो क्योंकि यावन्मात्र सर्व जगत त्रिगुणमयी माया का ही विकार है। इसलिये हे परंतप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तथा शूद्रों के भी कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा विभक्त किये हैं अर्थात् पूर्व कृत कर्मों के संस्कार रूप स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के अनुसार विभक्त किये गये हैं ॥ ४०-४१ ॥

There is no being on earth or in the middle region or even among the gods or anywhere else, which is free from these three Gunas born of Prakriti. The duties of the Brahmans,

the Ksatriyas and the Vaisyas, as well as of the Sudras, have been divided according to their inborn qualities, Arjuna. (40-41)

★ ★

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

उनमें अन्तःकरण का निग्रह, इन्द्रियों का दमन, बाहर भीतर की शुद्धि, धर्म के लिये कष्ट सहन करना और क्षमा भाव एवं मन, इन्द्रिय और शरीर की सरलता, आस्तिकबुद्धि, शास्त्रविषयक ज्ञान और परमात्मतत्त्व का अनुभव भी ये तो ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं । और शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में भी न भागने का स्वभाव एवं दान और स्वामीभाव अर्थात् निःस्वार्थ भाव से सबका हित सोच कर शास्त्राज्ञानुसार, शासन द्वारा प्रेम के सहित पुत्र तुल्य प्रजा को पालन करने का भाव–ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४२–४३ ॥

Subjugation of the mind and senses, enduring hardships for the discharge of one's sacred obligations, external and internal purity, forgiving the faults of others, straightness of mind, senses and behaviour, belief in the Vedas and other scriptures, God and life after death etc., study and teaching of the Vedas and other scriptures and realization of the truth relating to God – all these constitute the natural duty of a Brahman. Exhibition of valour, fearlessness, firmness, cleverness and steadiness in battle, bestowing gifts and lordliness –– all these constitute the natural duty of a Ksatriya. (42-43)

★ ★

कृषि गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् । परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः । स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दन्तितच्छृणु ॥

तथा खेती गो पालन और क्रयविक्रय रूप सत्य व्यवहार ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं और सब वर्णों की सेवा करना यह शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है । एवं इस अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्यभगवत् प्राप्ति रूप परम सिद्धि को प्राप्त होता है उस विधि को तू मेरे से सुन ॥ ४४–४५ ॥

Agriculture, rearing of cows and honest enchage of merchandise – these constitute the natural duty of a Vaisya (a member of the trading class). And service of the other classes is the natural duty even of a Shudra (a member of the labouring class). Keenly devoted to his own natural duty, man attains the higest perfection in the shape of God-Realization. Hear the mode of performance whereby the man engaged in his inborn duty reaches that highest consummation. (44-45)

★ ★

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

हे अर्जुन ! जिस परमात्मा से सर्वभूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त होता हैं । इस लिये अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से, गुण रहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता ॥ ४६–४७ ॥

Man attains the highest perfecion by worshipping through his own natural duties Him from whom the tide of creation has streamed forth and by whom all this universe is pervaded. Better is one's own duty, though devoid of merit, than the duty of another well-performed; for performing the duty ordained by his own nature man does not incur sin. (46-47)

★ ★

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् । सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥
असक्त बुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगत स्पृहः । नैष्कर्म्य सिद्धिं परमां संन्यसेनाधिगच्छति ॥
सिद्धिं प्राप्तो यथाब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे । समासेनैव कौन्तेय निष्ठाज्ञानस्य या परा ॥

अतएव हे कुन्तीपुत्र ! दोष युक्त भी स्वाभाविक कर्म को नहीं त्यागना चाहिये, क्योंकि धूएं से अग्नि के सदृश सब ही कर्म किसी न किसी दोष से आवृत्त हैं । तथा हे अर्जुन ! सर्वत्र आसक्ति रहित बुद्धिवाला, स्पृहा रहित और जीते हुए अन्तःकरण वाला पुरुष सांख्ययोग के द्वारा भी परम नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता हे अर्थात् क्रिया रहित शुद्ध सचिदानन्दघन परमात्मा की प्राप्ति रूप परमसिद्धि को प्राप्त होता है । इसलिये हे कुन्तीपुत्र ! अन्तःकरण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ पुरुष जैसे सांख्ययोग के द्वारा सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को प्राप्त होता है तथा जो तत्वज्ञान की परानिष्ठा है, उसको भी तू मेरे से संक्षेप से जान ॥ ४८–४९–५० ॥

Therefore, Arjuna, one should not abandon one's innate duty, even though it may be tainted with blemish; for even as fire is enveloped in smoke, all undertakings are clouded with demerit. He whose intellect is unattached evrywhere, whose thirst for enjoyment has altogether disappeared and who has subdued his mind, reaches through Sankhyayoga (the path of Knowledge) the consummation of actionlessness. Arjuna, know from Me only briefly the process through which man having attained actionlessness, which is the highest consummation Jnanayoga (the path of knowledge), reaches Brahma. (48—49—50)

★ ★

बुद्धयाविशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च । शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौव्युदस्य च ॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्काय मानसः । ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् । विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

हे अर्जुन ! विशुद्ध बुद्धि से युक्त, एकान्त और शुद्ध देश का सेवन करने वाला तथा मिताहारी जीते हुए मन, वाणी, शरीर वाला और दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष निरन्तर ध्यान योग के परायण हुआ, सात्त्विक धारणा से अन्तःकरण को वश में करके तथा शब्दादिक विषयों को त्याग कर और राग द्वेषों को नष्ट करके । तथा अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और संग्रह को त्याग कर, ममता रहित और शान्त अन्तःकरण हुआ. सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिये योग्य होता है ॥ ५१-५२-५३ ॥

Endowed with an untarnished intellect and partaking of a light, Sattvic and regulated diet, living in a lonely and undefiled place having rejected sound and other objects of sense, having controlled the mind, speech and body by restraining the mind and senses through firmness of a Sattvic type, taking a resolute stand on dispassion, after having completely got rid of attraction and aversion and remaining ever devoted to the Yoga of meditation having given up egotism, violence, arrogance, lust, anger and luxuries, devoid of the feeling of meum and tranquil of heart,—such a man becomes qualified for oneness with Brahma, who is Truth, Consciousness and Bliss. (51-52-53)

★ ★

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
भक्त्यामामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः । ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्

फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित हुआ प्रसन्न चित्त वाला पुरुष न तो किसी वस्तु के लिये शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है एवं सब भूतों में सम-भाव हुआ मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है । और उस पराभक्ति के द्वारा, मेरे को तत्त्व से भली प्रकार जानता है मैं जो और जिस प्रभाव वाला हूँ तथा उस भक्ति से मेरे को तत्त्व से जान कर तत्काल ही मेरे में प्रवेश हो जाता है, अर्थात् अनन्य भाव से मेरे को प्राप्त हो जाता है, फिर उसकी दृष्टि में मुझ वासुदेव के सिवा और कुछ भी नहीं रहता ॥ ५४-५५ ॥

Established in identity with Brahma (who is truth, consciousness and Bliss solidified), and cheerful in mind, the Saukhyayogi no longer grieves nor craves for anything. The same to all beings, such a Yogi attains supreme devotion to Me. Through that supreme devotion he comes to know Me in reality, what and and how great I am; and thereby knowing Me in essence the forthwith enters into my being. (54-55)

★ ★

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः । मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः । बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥

और मेरे परायण हुआ निष्काम कर्म योगी तो संपूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन, अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाता है । इसलिये हे अर्जुन ! तू सब कर्मों को

मन से मेरे अर्पण करके मेरे परायण हुआ, समत्वबुद्धिरूप निष्काम कर्मयोग को अवलम्बन कर के निरन्तर मेरे में चित्त वाला हो ॥ ५६-५७ ॥

The Karmayogi, however, who depends on Me, attains by My grace the eternal, imperishable state, even though performing all actions. Mentally resigning all your duties to Me and taking recourse to Yoga in the form of even-mindedness, be solely devoted to me and constantly give your mind to Me. (56-57)

★ ★

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि । अथचेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥
यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे । मिथ्यैषव्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति

इस प्रकार तू मेरे में निरन्तर मन वाला हुआ, मेरी कृपा से जन्म मृत्यु आदि सब संकटों अनायास ही तर जायगा और यदि अहंकार के कारण मेरे वचनों को नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायेगा अर्थात् परमार्थ से भ्रष्ट हो जायगा। और जो तू अहकार को अवलम्बन करके ऐसे मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा तो यह तेरा निश्चय मिथ्या है, क्योंकि क्षत्रियपन का स्वभाव तेरे को जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा ॥ ५८-५९ ॥

with your mind thus given to Me, you shall tide over all difficulties by My grace. And if from egotism, you will not listen, you will be lost. If taking your stand on egotism, you think "I will not fight", vain is this resolve of yours; nature will drive you to the act.(58-59)

★ ★

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा । कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

और हे अर्जुन ! जिस कर्म को तू मोह से नहीं करना चाहता है, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्म से बंधा हुआ परवश होकर करेगा। क्योंकि हे अर्जुन ! शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ हुए संपूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत प्राणियों के हृदय में स्थित है ॥ ६०-६१ ॥

That action too which you are not willing to undertake through ignorance,- bound by your own duty born of your nature, you will helplessly perform. Arjuna God abides in the heart of all creatures, causing them to revolve according to their Karma by His illusive power, seated as those being are in the vehicle of the body. (60—61)

★ ★

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत । तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया । विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥

इसलिये हे भारत ! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, उस परमात्मा की कृपा से ही परम शान्ति को और सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिये कहा है, इस रहस्य युक्त ज्ञान को संपूर्णता से अच्छी प्रकार विचार के फिर तू जैसे चाहता है वैसे ही कर अर्थात् जैसी तेरी इच्छा हो वैसे ही कर ॥ ६२–६३ ॥

Take shelter in Him alone with all your being, Arjuna. By His mere grace you shall attain supreme peace and the eternal state. Thus has this wisdom. more secret than secrecy itself, been imparted to you by Me. Fully pondering it, do as you like. (62-63)

★ ★

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

इतना कहने पर भी अर्जुन का कोई उत्तर नहीं मिलने के कारण श्री कृष्ण भगवान फिर बोले हे अर्जुन ! संपूर्ण गोपनीयों से भी अति गोपनीय, मेरे परम रहस्ययुक्त वचन को तू फिर भी सुन क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय है इससे यह परमहितकारक वचन मैं तेरे लिये कहूँगा। हे अर्जुन ! तू केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से नित्य-निरन्तर अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वर को ही अतिशय श्रद्धा भक्तिसहित, निष्कामभाव से नाम. गुण और प्रभाव के श्रवण, कीर्तन, मनन, और पठन पाठनद्वारा, निरन्तर भजनेवाला हो तथा मेरा (शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट कुण्डल आदि भूषणोंसे युक्त, पीताम्बार वनमाला और कौस्तुभमणिधारी विष्णुका) मन, वाणी और शरीर के द्वारा सर्वस्व अर्पण करके, अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो और मुझ सर्वशक्तिमान्, विभूति बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता उदारता, वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेव को विनयभावपूर्वक भक्ति सहित साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करने से तू मेरे को ही प्राप्त होगा, यह मैं तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय सखा है ॥ ६४–६५ ॥

Hear, again My supremely secret word the most esoteric of all truths. You are extremely dear to me; therfore, I shall offer you this salutary advice. Give your mind to Me, be devoted to Me, worship Me and bow to Me. Doing so you will come to Me alone, I truly Promise you; for you are exceptionally dear to Me. (64—65)

★ ★

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन। न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥

इसलिये सब धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्णकर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव की ही अनन्यशरण को प्राप्त हो, मैं तेरे को सम्पूर्ण पापों से मुक्त दूंगा, तू शोक मत कर।

हे अर्जुन ! इस प्रकार तेरे लिये कहे हुये इस गीतारूप परम रहस्य को किसी काल में भी न तो तप रहित मनुष्य के प्रति, न भक्तिरहित के प्रति तथा न ही न सुनने की इच्छावाले के प्रति और न मेरी निन्दा करने वाले के प्रति कहना चाहिये ॥ ६६—६७ ॥

Resigning all your duties to Me, the all-powerful and all-supporting Lord, take refuge in Me alone. I shall absolve you of all sins, worry not. This secret gospel of the Gita should never be imparted to a man who lacks penance, nor to him who is wanting in devotion, nor even to him who lends not a willing ear; and in no case to him who finds fault with Me. (66-67)

★ ★

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति । भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः । भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥

क्योंकि जो पुरुष परम प्रेम से इस परम रहस्य युक्त गीताशास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा अर्थात् निष्कामभाव से प्रेम पूर्वक मेरे भक्तों को पढ़ावेगा या अर्थ की व्याख्या द्वारा इसका प्रचार करेगा वह निःसन्देह मेरे को प्राप्त होगा। और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई होगा और न उससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्यारा पृथ्वी में दूसरा कोई होवेगा ॥ ६८—६९ ॥

He who offering the highest love to me, preaches the most profound gospel of Gita among My devotees, shall come to Me alone; there is no doubt about it. Among men there is none who does me a more loving service than he; nor shall anyone be dearer to Me on the entire globe than he. (68-69)

★ ★

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः । ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥
श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः । सोऽपि मुक्तःशुभांल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥
कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा । कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥

तथा हे अर्जुन ! जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद रूप गीता शास्त्र को पढ़ेगा, अर्थात् नित्य पाठ करेगा उसके द्वारा मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊंगा, ऐसा मेरा मत है। तथा जो श्रद्धायुक्त और दोष युक्त दृष्टि से रहित हुआ इस गीता शास्त्र का श्रवण मात्र भी करेगा, वह भी पापों से मुक्त हुआ, उत्तम कर्म करने वालों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होवेगा। इस प्रकार गीता का माहात्म्य कह कर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने अर्जुन से पूछा, हे पार्थ ! क्या यह मेरा वचन तैने एकाग्रचित्त से श्रवण किया ? और हे धनंजय ! क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह थोड़ा भी नष्ट हुआ ? ॥ ७०-७१-७२ ॥

Whosoever studies this sacred dialogue of ours in the form of the Gita, by him too shall I be worshipped through wisdom-sacrifice; such is My mind. The man who hears the holy Gita with reverence and in an uncarping spirit,- liberated from sin, he too shall reach happy worlds of the virtuous. Have you heard this gospel of the Gita with one-pointed mind Arjuna ? And has your delusion born of ignorance melted away, O conquerer of riches ? (70-71-72)

★ ★

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत । स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

इस प्रकार भगवान के पूछने पर अर्जुन बोला, हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिये मैं संशय रहित हुआ स्थित हूँ और आपकी आज्ञा पालन करूंगा ॥ ७३ ॥

Arjuna said: Krishna, by Your grace my delusion has fled and wisdom has been gained by me I stand shorn of all doubts. I will do your bidding. (73)

★ ★

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः । संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् । योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥

इसके उपरान्त संजय बोला, हे राजन ! इस प्रकार मैंने श्री वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अद्भुत रहस्य युक्त और रोमाञ्च कारक संवाद को सुना । श्री व्यास जी की कृपा से दिव्य दृष्टि द्वारा मैंने इस परम रहस्य युक्त गोपनीय योग को साक्षात् कहते हुए स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान से सुना है ॥ ७४-७५ ॥

Sanjaya said : Thus I heard the mysterious and thrilling conversation between Shri Krishna and the high-souled Arjuna, son of Kunti. Having been blessed with the divine vision by the grace of Shri Vyasa I heard this supremely esoteric gospel from the Lord of Yoga, Shri Krishna Himself, imparting it to Arjuna before my very eyes. (74-75)

★ ★

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् । केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः । विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

इसलिये हे राजन ! श्री कृष्ण भगवान और अर्जुन के इस रहस्य युक्त कल्याण कारक और

अद्भुत संवाद को पुनः-पुनः स्मरण करके मैं वारम्बार हर्षित होता हूं। तथा हे राजन ! श्रीहरि के उस अति अद्भुत रूप को भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्त में महान आश्चर्य होता है और मैं बारम्बार हर्षित होता हूं। हे राजन ! बिशेष क्या कहूँ ? जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान हैं और जहां गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वही पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है ॥ ७६-७७-७८ ॥

Remembe ing over and over, that sacred and mystic conversation between Bhagavan Shri Krishna and Arjuna. O king ! I rejoice again and yet again. Remembering also, again and again, that most wonderful Form of shri Krishna, great is my wonder and I rejoice over and over again. Whereever there is Bhagavan shri Krishna the Lord of Yoga, and wherever there is Arjuna, the wielder of the Gandiva bow, goodness, victory, glory and unfailing righteousness are there; such is my conviction. (76-77-78)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवत्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥



श्री गीता जी की आरती

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते ।
हरि–हिय–कमल–विहारिणि सुन्दर सुपुनीते ॥
कर्म–सुमर्म–प्रकाशिनि कामासक्तिहरा ।
तत्त्वज्ञान–विकाशिनि विद्या ब्रह्म परा ॥ जय० ॥
निश्चल–भक्ति–विधायिनि निर्मल मलहारी ।
शरण–रहस्य–प्रदायिनि सब विधि सुखकारी ॥ जय० ॥
राग–द्वेष–विदारिणि कारिणि मोद सदा ।
भव–भय–हारिणि तारिणि परमानन्दप्रदा ॥ जय० ॥
आसुर–भाव–विनाशिनि नाशिनि तम रजनी ।
दैवी सद्गुणदायिनि हरि–रसिका सजनी ॥ जय० ॥
समता, त्याग सिखावनि, हरि–मुख की बानी ।
सकल शास्त्र की स्वामिनि श्रुतियों की रानी ॥ जय० ॥
दया–सुधा बरसावनि मातु ! कृपा कीजै ।
हरि–पद प्रेम दान कर अपनो कर लीजै ॥ जय० ॥

'कृष्णमयी पावन गीता !'

तरण–तारणी; पतित–पावनी, राममयी मानो सीता ।
रोम–रोम कम्पित कलियुग का, भव–बाधा अतिशय भीता ।
चन्दन उस प्राणी की पद–रज, जो इसका अमृत पीता ।
गीतामय भगवान् कृष्ण हैं, कृष्णमयी पावन गीता ॥

—ब्रह्मानन्द "बन्धु"

श्रीमद्भगवत्-गीता का सार

(श्री जयराम गुप्ता ऋषिकेश)

दोहा—अर्जुन पूछा कृष्ण से, त्याग तत्व का हाल ।
कृष्ण कहा समुझाई के, जो कालहु के काल ॥
चौ०–त्याग नियत करमन का भाई । उचित नहीं अस कह यदुराई ॥
नियत कर्म हम जो जग मानैं । वर्णाश्रम के धर्महिं जानैं ॥
अरु सामान्य धर्म जग जोई । कर्म स्वभाविक जो जग होई ॥
ते सब सुनौं धनञ्जय वीरा । होंइ स्वधर्म स्वकर्म शरीरा ॥
दोहा—सत, तामस अरु राजसी, त्याग कहा भगवान ।
जो जैसा जग में करै, तस फल मिलै जहान ॥
वैश्यकर्म क्षत्री करम और शूद्र के काम ।
अर्जुन ने सब सुनि लिये, कहे सकल घनश्याम ॥
चौ०–जो रहस्य ज्ञानहिं कर प्यारा । तुमने सुना यहां है सारा ॥
अब तू भली भांति मन लाई । करई विचार ताहि पर भाई ॥
उसके बादि चहौं सो कीजै । अपने मन ते निर्णय लीजै ॥
हे राजन जहैं कृष्ण मुरारी । और जहां अर्जुन धनुधारी ॥
वहां सब विजय विभूति विराजै । अचल नीति अरु लक्ष्मी राजै ॥
गीता दिव्य कृष्ण की वाणी । समुझि लेई जो जग में प्राणी ॥
उस पर कृपा कृष्ण की होई । कृष्ण कृपा बिन जान न कोई ॥

मैं गीता हूँ

आशुकवि—श्री बद्रीसिंह जी विशाल

मैं गीता हूँ, सुगीता हूँ, पावन और पुनीता हूँ ।
जो खुद रावण का नाश करे, मैं वह मेधावी सीता हूँ ॥
एकाध देश की बात नहीं, मैं सारा विश्व जगाती हूँ ।
मैं कर्म ज्ञान और भक्ति की, राहें सबको दिखाती हूँ ॥
जब दुनियां धर्म भुला बैठे, जब पापतिमिर बढ़ जाता है ।
अज्ञान मिटाने को जग का, मैं ज्ञान दीप बन आती हूँ ॥
मैं शोक मोह की बैरन हूँ, भक्ति और ज्ञान की गीता हूँ ।
मैं गीता हूँ मैं गीता हूँ, मैं पावन और पुनीता हूँ ॥

गीता-प्रचार-समाचार

प्रेषक—श्री गोपालमित्र ब्रह्मचारी

कानपुर गीता जयन्ती महोत्सव

ता० २६ नवम्बर सन् १९७९ को बगदा-
चार्य श्री स्वामी नारदानन्द जी महाराज सरस्वती
की अध्यक्षता में गीता पार्क, नेहरू नगर में गीता-
जयन्ती पर्व बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। मंच
पर उत्तर-प्रदेश के अनेक विश्वविद्यालयों के अनेक
दर्शनाचार्य उपस्थित थे। श्री ब्रह्मचारी शौनक जी
एम० ए० के प्रबन्धकत्त्व में सम्मेलन पूर्ण सफल
रहा। मंच पर महामण्डलेश्वर श्री स्वामी वेद-
व्यासानन्द जी महाराज का विश्वविद्यालयों से
पधारे सभी दर्शनाचार्यों ने पुष्पमालायें पहनाकर
भारी स्वागत किया। अपने लम्बे प्रवचन में महा-
मण्डलेश्वरजी ने जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द
जी के जीवन व उनके कार्यों पर विस्तार से
प्रकाश डाला तथा गीता की महिमा, गीता-
माहात्म्य व गीता के निष्काम कर्मयोग का विस्तृत
व शोध-पूर्ण प्रवचन किया। गीता पार्क में श्री
जगदाचार्य का जन्मोत्सव गीता जयन्ती के रूप
में प्रतिवर्ष मनाया जाता है। हजारों की संख्या में
उनके शिष्य वृन्द एकत्र होते हैं श्री महामण्डलेश्वर
जी महाराज उन्हें गुरु रूप में मानते हैं और वह
भी उनका आदर करते हैं।

❀ ❀ ❀

कुरुक्षेत्र में गीता जयन्ती समारोहः—

निष्काम कर्मयोग की साक्षात् मूर्ति श्री स्वामी
केशवानन्द जी महाराज के नेतृत्व, प्रबन्धकत्व एवं
संयोजकत्त्व में कुरुक्षेत्र रेलवे स्टेशन के पास भारत
सेवाश्रम संघ आश्रम में प्रतिवर्ष की भांति अनेक
सन्त महात्माओं की उपस्थिति में महाराज श्री
(म० मं० श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज
सरस्वती) ने लगातार दो दिन गीता-महिमा,
गीता का सार और मूल गीतोपदेश जनता को
श्रवण कराया। मंच पर श्री लाला जगतनारायण
जी सम्पादक 'पंजाब केसरी', कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी
के उपकुलपति सहित अनेक विद्वान, सन्त उपस्थित
थे। महामण्डलेश्वर जी गीता-जयन्ती के दिन श्री
प्रेमचन्द जी गुप्ता, अध्यक्ष सनातन धर्म महासभा
दिल्ली के संयोजकत्त्व में जमुनातट पर लगने वाले
मानस-सत्सग-मण्डल के चुने हुये भक्तों से खचा-
खच भरी हुयी एक बस द्वारा कुरुक्षेत्र पधारे और
कुरुक्षेत्र में गीता के जन्म स्थान ज्योतिसर को
पवित्र भूमि पर बैठकर सभी दिल्ली निवासी भक्तों
सहित लगातार तीन घन्टे 'श्री कृष्णाय नमः' मन्त्र
के साथ आहुतियां डालते हुये गीता के अठारह
अध्यायों का अखण्ड पारायण यज्ञ सम्पन्न किया।

❀ ❀ ❀

दिल्ली में गीता-जयन्ती समारोह

पिछले कई वर्षों के बाद दिल्ली में गीता-जयन्ती समारोह म०मं० श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज के संरक्षकत्व व श्री प्रेमचन्द गुप्ता के संयोजकत्व में अन्तर्राज्यीय बस अड्डे के सामने धूपघड़ी पार्क में ता० २ दिसम्बर १९७९ को बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। मंच पर दिल्ली नगर के उपराज्यपाल श्री दिलीपराय कोहली तथा मुख्य कार्यकारीपार्षद श्री केदारनाथ साहनी, दिल्ली नगर निगम के महापौर एवं सन्त महात्मा-बृन्द म० मं० श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज सरस्वती, म० मं० श्री महेश्वरदेव जी. श्री स्वामी विवेकानन्द जी दण्डी स्वामी नैमिषारण्य, तिरुपति बाला जी व श्री रामेश्वरम् भारत के दोनों प्रसिद्ध मन्दिरों के महन्त व पुजारी भी दक्षिण भारत से पधारे हुये थे। सन्त कृपाल-आश्रम के संस्थापक, रुहानी सत्संग के वर्तमान अध्यक्ष श्री सन्त दर्शन-सिंह जी महाराज भी अपने हजारों शिष्यों सहित समारोह में पधारे और गीता की महिमा पर सार-गर्भित भाषण दिया। श्री प्रेमचन्द जी गुप्ता ने जमुना के जल में पड़ने वाले प्रदूषण के दुष्प्रभाव के सम्बन्ध में मार्मिक अपील की जिसका उत्तर उपराज्यपाल श्री कोहली तथा मुख्यकार्यकारी-पार्षद श्री साहनी ने बड़े उत्साहवर्धक शब्दों में प्रकट किया कि दिल्ली प्रशासन इस समस्या पर अपनी निश्चित योजना बना चुका है और यदि हम लोगों को कुछ दिन और कार्य करने का अवसर मिला तो तीन वर्ष के अन्दर जमुना तट पर हरिद्वार एवं बनारस की तरह कुदसिया घाट से रेलवे पुल तक पक्के घाट बन जावेंगे। प्रातः काल ९ बजे महाराज श्री ने अपने १८ दिन लम्बी कथा का हजारों भक्तों द्वारा गीता की आरती के उपरान्त विसर्जन किया। तत्पश्चात् श्रोतागण कथा से उठकर गीता-जयन्ती समारोह में सम्मिलित हुए। एक सौ शामियानों का पंडाल जिसमें लगभग २५ हजार भक्त जनता, सन्त महात्माओं के प्रवचन श्रवण कर रही थी। दिल्ली में प्रथम बार ऐसे विशाल रूप में गीता-जयन्ती समारोह मनाया गया। प्रातः ९ बजे से मध्याह्नोत्तर ३ बजे तक कार्यक्रम चलता रहा। दिल्ली की लगभग ५० सनातन धर्म सभाओं के अध्यक्ष व प्रधान-मन्त्री एक-एक या दो-दो बसों में भक्तों की कीर्तन करती टोलियां साथ लेकर इस समारोह में आये थे। महोत्सव के अन्त में महाराज श्री ने अपने कर-कमलों द्वारा एक-२ सरोपा व रेशमी चद्दर का सभी नेताओं, महात्माओं, सनातन धर्म सभाओं के प्रतिनिधियों व कार्यकर्त्ताओं को प्रसाद देकर समारोह का विसर्जन किया।

सम्पूर्ण समारोह के मुख्य प्रबन्धक व संयोजक श्री प्रेमचन्द गुप्ता ने उपस्थित सन्तगण, नेतागण श्रोता तथा महामण्डलेश्वर जी महाराज को उनकी १८ दिन लम्बी कथा एवं कुरुक्षेत्र में भक्तों को ले जाकर गीता का अखण्ड पाठ कराने व गीता जयन्ती समारोह की अध्यक्षता करने के उपलक्ष्य में विनम्र धन्यवाद दिया। अन्त में सभी महात्माओं ने श्री प्रेमचन्द गुप्ता को उनके अदम्य उत्साह, संगठन-शक्ति तथा सभी सनातन धर्मी शक्तियों को संगठित करने के लिये धन्यवाद व आशीर्वाद प्रदान दिया।

卐

महामंडलेश्वर जी महाराज का पंजाब प्रान्त के अनेक नगरों में ९ दिसम्बर से १५ दिसम्बर तक तूफानी दौरा —

फाजिल्का, लाधुकामंडी (फिरोजपुर), जल-
न्धर, होशियारपुर, अम्बाला, सहारनपुर आदि
नगरों का केवल ७दिनों में घनघोर शीत के दिनों
में महाराज श्री ने तूफानी दौरा सम्पन्न किया।
फाजिल्का में श्रीमती रामप्यारी देवी (यशोदा
माता) लाधुकामंडी में श्री देशराज असीजा तथा
उनके पिता व जण्डवाला बीमेशाह के श्री सुदेशी-
लाल जी पुजारा तथा जलन्धर में श्री रामशरन
दास (भूतपूर्व चेयरमैन नगरपालिका जलन्धर)
तथा उनके भाई श्री सेवादास जी पुजारा एवं
होशियारपुर में श्री डा० लीलासैनी आदि गीता
प्रचारक प्रतिनिधियों ने महाराज श्री का स्थान-२ पर भव्य स्वागत करते हुए प्रवचनों का आयोजन किया। इस प्रकार एक सप्ताह पर्यन्त देश के सर्वाधिक शीत प्रधान प्रान्त पञ्जाब का गीता-प्रचार दौरा समाप्त कर के ता० १६ दिसम्बर सन् १९७९ को महाराज श्री हरिद्वार, ऋषिकेश गीता-आश्रम वापस लौटे और केवल २४ घन्टे आश्रम में रहकर ता० १७ दिसम्बर को कुछ ब्रह्मचारियों के सहित बाम्बे एक्सप्रेस से पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार सूरत नगर (गुजरात) के दौरे के लिये प्रस्थान कर दिया।

सनातन-धर्म-सेवा-संघ सूरत में गीता-ज्ञान-यज्ञ

ता० २० दिसम्बर १९७९ से २० जनवरी सन्
१९८० तक बालाजी रोड़ जरनल हास्पीटल के
सामने सनातन-धर्म-सेवा-संघ के स्वर्गीय प्रधानमंत्री
श्री कन्हैयालाल जी मोदी तथा सेवा संघ के प्रचार
मंत्री के विशेष आमन्त्रण पर महाराज श्री ता० १९
दिसम्बर को सूरत पहुँचे। तदुपरांत २० दिसम्बर
से जनता के भारी आग्रह पर गीता के ६ वें अध्याय
के प्रत्येक मंत्र की व्याख्या करते हुये एक मास
लम्बी कथा आरम्भ की। दिन प्रतिदिन नगर में
उत्साह बढ़ता ही चला गया। कथा के समाप्त
होने से एक सप्ताह पूर्व ता० १३ जनवरी से २०
जनवरी तक ६ वें अध्याय का प्रवचन समाप्त
करके अन्य अध्यायों के चुने हुये प्रसंग और चुने
हुये मन्त्रों की खोज पूर्ण व्याख्या करके विद्वानों
को आनन्दित कर दिया। कथा के अन्त में दो
दिन ता० २१ व २२ जनवरी, सोमवार व मंगल-
वार को गीता के ९-९ अध्यायों का सामूहिक गीता पाठ और प्रत्येक मन्त्र के अन्त में 'श्रीकृष्णाय नमः' मंत्र से आहुतियां देकर बड़ी उत्तम रीति से उत्साह जनक वातावरण में कथा की पूर्णाहुति की।

अन्तिम दो दिन पूर्णाहुति के समय जनता की भीड़ व उत्साह दर्शनीय था। नगर के जिन प्रसिद्ध साधु सन्त सेवी संस्थाओं व भक्तों ने महाराज श्री को अपने यहाँ विशेष रूप से बुलाकर सन्मान किया उनमें से कुछ प्रसिद्ध भक्तों के नाम निम्नांकित हैं श्री हंसमुखलाल मगनलाल कापडिया, श्री केशवलाल मगनलाल कापड़िया, श्री सुन्दरभाई बाबूभाई कंसारा, श्री नटवरलाल जागीरदार, श्री डा० प्रद्युम्न वखारिया, श्री बाबूभाई दयालभाई, श्री जसुमति मगनलाल ठाकर, श्री माता बेन-नरोत्तम भाई, श्री मूलजीभाई भगवानदास, श्री

भीखाभाई लालजी भाई, श्री रमणलाल पेडूभाई पुजारा, श्री गंगाबेन मोहनलाल पटेल, श्री रमा बहन मंगूभाई देसाई, सेठ गमनलाल लल्लूभाई, सविताबेन, मनसुखलाल शंकरलाल पचोगर, बाबू भाई दयालजी भाई पटेल, बालूभाई डाह्याभाई, नर्वदाबेन छगनलाल जरीवाला, ठाकुरदास भूखण दास भगत, इन्दुलाल बालूभाई, भगवान जी देसाई, चञ्चलबेन, कान्तिलाल गंगाराम, सुनीलभाई बाबू-भाई मास्टर, सोमाभाई अम्बाराम जरीवाला, बी० एस० उपाध्याय, मास्टर धनसुखभाई कीका-भाई आदि-२ ने आमन्त्रित किया। श्री आशाभाई (स्वामी नारायण) सम्प्रदाय की सूरत शाखा अक्षर पुरुषोत्तम संस्थान ने भी महाराज श्री को अपने यहां बुलाकर भारी सम्मान किया।

बम्बई में एक सप्ताह पर्यन्त गीता प्रचार यज्ञः—

श्री गीता प्रचार सभा बम्बई के अध्यक्ष श्री बीरबल जी विजन व उपाध्यक्ष श्री तिलकराज जी खन्ना के आग्रह पर २२ जनवरी से २८ जनवरी तक छः दिन के लिये महाराज श्री बम्बई पधारे। महाराज श्री के पुराने परम भक्त अमृतसर निवासी श्री रामजीदास टण्डन तथा उनके पिता श्री नाथूराम जी टंडन एवं उनके पुत्र श्री जगमोहन टण्डन, श्री श्यामजी टण्डन, श्री रमेश टण्डन आदि सभी सदस्यों ने महाराज श्री को जुहू समुद्र तट स्थित अपने फ्लैट में ठहराया और भारी स्वागत किया। श्री रामजीदास टण्डन ने महाराज श्री को स्वनिर्मित ऊषा-कुटीर खपोली में भी आमन्त्रित करके सम्मानित किया। श्री बीरबल विजन तथा श्री तिलकराज जी खन्ना आदि बम्बई के अनेक भक्तों ने अपनी-अपनी कोठियों में बुलाकर विशेष सत्संग एवं प्रवचन सम्पन्न कराये।

श्री गीता-आश्रम की जल-व्यवस्था के लिये श्री रामजीदास टन्डन बम्बई वालों का उत्तम संकल्प—

श्री गीता आश्रम के भूखण्डों में स्थित उपवनों व उद्यानों तथा उसके निवासियों के लिये वर्तमान जल व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। अस्तु पीने व सिंचाई के लिये गंगाजी से एक पाईप लाईन आश्रम तक लाने के लिये श्री रामजीदास टण्डन जी ने २५ हजार रुपया इस पवित्र और जनोपयोगी कार्य में व्यय करने का संकल्प किया है। यह कार्य शीघ्र ही पूर्ण होगा। गीता-आश्रम में बारहों महीने यात्रियों का आवागमन रहता है यात्रियों व आश्रम वासियों को पीने के पानी के लिये गंगाजल का अभाव है। गंगाजल घड़ों में भरकर लाना पड़ता है। गंगा के किनारे ट्यूबवेल बनाकर और उससे पीने व सिंचाई के लिये दो इञ्च पानी आश्रम में लाया जावेगा इस कार्य में आपका योगदान सराहनीय है। इस योगदान से गीता-आश्रम में सिंचाई व पीने के पानी की व्यवस्था सदा के लिये सुधर जावेगी। श्री टण्डन जी व उनके परिवार को इस पुनीत कार्य में सहयोग देने के लिये गीता-आश्रम-परिवार के समस्त सदस्यों की ओर से पुनः-पुनः धन्यवाद तथा उनके कल्याण के लिए परमात्मा से बारम्बार प्रार्थना है।

भावी कार्यक्रम:

ता० ५-६ फरवरी सन् १९८० को महा-मण्डलेश्वर जी महाराज सन्त कृपालसिंह जी महाराज के जन्मोत्सव में भाग लेने के लिए श्री सन्त दर्शनसिंह जी द्वारा आयोजित सन्त कृपाल-आश्रम दिल्ली में पधारेंगे। तत्पश्चात् तारीख १३ से १७ फरवरी तक ८० वर्ष बाद पड़ने वाले खग्रास सूर्य ग्रहण के अवसर पर स्नानार्थ कुरुक्षेत्र पधारेंगे। पुनः ता० २४ से २६ फरवरी तक सनातन धर्म मन्दिर ईस्ट पटेल नगर नई दिल्ली के वार्षिकोत्सव में भाग लेंगे फरवरी मास के शेष दिनों में वे हरिद्वार ऋषिकेश गीता-आश्रम में विराजेंगे।

ता० १५ मार्च से १५ अप्रेल तक अर्ध कुम्भ पर्व के अवसर पर अ० भा० गीता प्रचार शिविर (भीमगोड़ा वाला पुल पार कर के पन्त द्वीप) में एक मास लगातार गीता प्रवचन करेंगे यह शिविर हरिकी पैड़ी हरिद्वार के अति निकट उत्तर की ओर पन्त द्वीप है में जहां पर लगभग पच्चीस धर्म प्रचार शिविर लग रहे हैं ता० १ अप्रेल से १५ अप्रेल तक अति आकर्षक २४ घण्टे अखण्ड सत्संग शिविर में चलेगा जिसमें गीता-सम्मेलन, भक्ति सम्मेलन, ज्ञान सम्मेलन, मानस सम्मेलन, राष्ट्रीय एकता सम्मेलन भारतीय संस्कृति सम्मेलन, वेदान्त सम्मेलन, सन्त सम्मेलन आदि अनेकानेक सम्मेलन सम्पन्न होंगे। इसी प्रकार यज्ञशाला में श्री गीता गायित्री यज्ञ, श्रीमद्भागवत-सप्ताह पारायण, मानस-पाठ, गीता-पाठ अनेक प्रकार के पाठ सम्पन्न होंगे। मेले में सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र यह कैम्प होगा। सभी धर्मानु-रागी भगवद्भक्तों से प्रार्थना है कि शिविर का पता नोट कर लें और हरिद्वार स्टेशन पर बस या रेल से उतरते ही सीधे भीमगोड़ा पहुँच जावें। शिविर में निवास, भोजन, बिजली पानी, शौचा-लय, लकड़ी, कोयला, चीनी, राशन तथा राऊटी टैण्ट आदि सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त रहेंगी। इसी प्रकार ता० २० अप्रेल से ३० अप्रेल तक उज्जैन में पूर्ण कुम्भ के अन्तिम दिनों में महामण्ड-लेश्वर जी महाराज दस दिन विराजेंगे उज्जैन का पता अ० भा० श्री गीता प्रचार शिविर c/o निरञ्जिनी अखाड़ा, अखाड़ा रोड उज्जैन होगा। उज्जैन कुम्भ के उपरान्त मई मास में महाराज श्री ५ मई से १५ मई फाजिल्का, जण्डवाला, और लाधुका मण्डी तथा अमृतसर नगरों का दौरा करेंगे। तत्पश्चात् २० मई से ३० जौलाई तक दो मास से अधिक गीता-आश्रम पर स्थायीरूप से विराजेंगे। फरवरी मार्च सन् १९८० के प्रारम्भिक दो मासों का प्रचार समाचार आगामी अङ्क में देखें।

व्यास पूजा (गुरु-पूर्णिमा)

२७ जौलाई १९८० व्यास-पूजा (गुरुपूर्णिमा) को देश के उच्चकोटि के विद्वान, सन्त महात्मा, योगसिद्ध, महापुरुष, भजनोपदेशक, संकीर्तन मंडल, तथा समस्त भक्तवृन्द सादर आमन्त्रित किये जा रहे हैं। इस अवसर पर अखण्ड-रामायण पाठ जुलूस एवं सन्त महात्माओं का विशाल भण्डारा आदि कार्यक्रम सम्पन्न होंगे। देश के विभिन्न नगरों तथा प्रान्तों से पूज्यपाद महाराज श्री के श्रद्धालु शिष्य परिवार २७ जौलाई गुरुपूर्णिमा के पवित्र पर्व पर उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा वैदिक मन्त्रों की ध्वनि में गुरुपूजा करेंगे।

हृषीकेश, लक्ष्मणझूला, स्वर्गाश्रम तथा उत्तरा-खण्ड हिमालय की गुफा कन्दराओं के तपस्वी साधु

बच्चों को धर्म शिक्षा दी जाय वर्ना देश नास्तिक हो जाएगा

कुरुक्षेत्र, ६ दिसम्बर : गत रात यहां भारत सेवा आश्रम संघ में गीता जयन्ती समारोह में अध्यक्षपद से भाषण करते हुए पंजाब केसरी के सम्पादक लाला जगत नारायण जी ने कहा कि यदि बच्चों को संस्कृत में धार्मिक शिक्षा न दी गई तो आगामी २० वर्ष के बाद देश नास्तिक हो जाएगा। चीन का उदाहरण हमारे सामने है कि किस प्रकार भगवान बुद्ध के पुजारी लाल क्रांति आने पर रातों रात नास्तिक हो गए तथा धर्म स्थान म्यूजियम बन गए।

लाला जी ने अपने भाषण में इस बात पर दुख व्यक्त किया कि आज हमारे जीवन का उद्देश्य सिर्फ धन कमाना ही रह गया है।

उन्होंने कहा कि आज यदि धर्म जीवित है तो भारत की देवियों के कारण ही जीवित है। भारतीय नारी का मुकाबला विश्व के किसी देश की नारी नहीं कर सकती। यह बड़ी विचित्र बात है कि महामंडलेश्वरों तथा सन्तों-महात्माओं की नगरी हरिद्वार में १९७२ के चुनाव में कम्युनिस्ट प्रत्याशी अर्थात् एक नास्तिक चुना गया था।

लाला जी ने आगे कहा कि आज की राजनीति में इन्सान बिक रहा है। आज राम राज्य नहीं बल्कि रावण राज्य है। आज का नवयुवक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के बारे में कुछ नहीं जानता। उसे तो सिर्फ फिल्मी अभिनेताओं तथा क्रिकेट के खिलाड़ियों के नाम याद हैं। उन्होंने कहा कि मैं १९२१ में तीन वर्ष के लिए जेल गया था तो वहां पर जेल गया था तो वहां पर जेल में तिलक जी की गीता पढ़ी। सेवा परम धर्म है अर्थात् सेवा सबसे बड़ा धर्म है। लाला जी ने अपील की कि युवक अपने माता पिता की सेवा करें। शराब न पियें और दहेज न लेने का प्रण करें।

लाला जी ने कहा कि अफसोस की बात है कि चुनाव सिर पर आ रहे हैं परन्तु किसी राजनीतिक पार्टी ने अपने घोषणा-पत्र में शराब बन्द करने का नारा नहीं दिया। सन्त-महात्मा लोगों को आदर्श विवाह करने की प्रेरणा दें। मन्दिरों तथा गुरुद्वारों में जाकर शादियां कराए। उन्होंने कहा कि आज भी कलकत्ता में ३०००० गाएं प्रतिदिन कत्ल हो रही है। देशवासी गोरक्षा के लिए आगे आयें।

इससे पूर्व १००८ महामण्डलेश्वर स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज ने समारोह का उद्घाटन करते हुए कहा कि लाला जगत नारायणजी सफेद कपड़ों में महान सन्त हैं जो इस उम्र में भी समाज सुधार के लिए दिन रात गांव गांव में घूम रहे हैं। स्वामी केशवानन्द जी महाराज ने भारत सेवा आश्रम संघ के बारे में प्रकाश डाला। ★★

सन्त महात्माओं, विरक्त वैष्णव साधुओं का प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी विशाल भण्डारा होगा, प्रात:काल सायंकाल एवं रात्रि में विद्वान संत महात्मा भजनोपदेशकों के संकीर्तन भजन तथा प्रवचन होंगे और महाराज श्री के गीतामय सदुपदेश प्रतिदिन दोनों समय होंगे।

आगामी १३ अप्रैल वैशाखी से व्यास-पूजा ता० २७ जौलाई पर्यन्त मई-जून जौलाई ३ मास लगातार प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी श्री गीता-आश्रम में म० मं० श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज तथा अनेक सन्तों की उपस्थिति में लगातार १२ घन्टे प्रतिदिन यह सत्संग चलेगा।

शोक-समाचार

(१)

महान शोक का विषय है कि सनातन धर्म के महान प्रचारक, लेखक, शास्त्रार्थ महारथी पूज्य श्री पं० माधवाचार्य जी का पौष शुक्ल सप्तमी २०३६ (२५ दिसम्बर १९७९) को ८२ वर्ष की आयु में सायं ६-१५ बजे निधन हो गया। वे कई संस्थाओं के जन्मदाता थे। सनातन धर्म के प्रचार प्रसार में ही उन्होंने अपना समस्त जीवन व्यतीत कर दिया था। वे सनातन धर्म जगत के एक महान स्तम्भ थे, उनके निधन से सनातन धर्म जगत की भारी क्षति हुयी हैं जिसकी पूर्ति असम्भव है। उन्होंने सनातन-धर्म-प्रचार के लिए दिल्ली में धर्मधाम एवं धर्म प्रेस की स्थापना की, जिसके अन्तर्गत मासिक-पत्र लोकालोक के संचालन व सम्पादन के साथ कई धर्मग्रन्थों का प्रकाशन भी किया एवं सनातन धर्म के सम्बन्ध में कई पुस्तकों को स्वयं लिखकर प्रकाशित किया।

उनके निधन पर "गीता-सन्देश" परिवार हार्दिक शोक व्यक्त करता है और परमपिता परमात्मा से कामना करता है कि उनके शोक संतप्त परिवार को इस महान दुःख को वहन करने की क्षमता दे।

(२)

सनातन धर्म सेवासंघ बालाजी रोड सूरत के प्रधान मन्त्री श्री कन्हैयालाल जी मोदी का अचानक एक छोटे से आपरेशन के अन्तर्गत निधन हो गया। जिससे सारे सूरत शहर में शोक छा गया और बाजार बन्द हो गये। वे एक प्रख्यात समाज सेवी नेता और प्रभु भक्त थे। उहोंने अपने कार्यकाल में सनातन धर्म सेवा संघ को एक नया रूप दिया और कई लाख रुपये की लागत से पांच मञ्जिल ऊँचा सूरत शहर के बीच में एक बहुत बड़े हास्पीटल जनता को प्रेरणा, देकर बनवाया उनके इस असामयिक निधन पर "गीता-सन्देश" परिवार शोक प्रकट करता है और कामना करता है कि स्वर्गस्थ आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

तीर्थ-यात्रा-ट्रेन के सम्बन्ध में—

❀ आवश्यक-सूचना ❀

रेलवे मंत्रालय भारत सरकार द्वारा १५ मार्च सन १९८० के उपरान्त किसी भी मास में कभी भी तीर्थयात्रा ट्रेन ले जाने की नवीन स्वीकृति प्राप्त।

यह आश्वासन एवं स्वीकृति प्राप्त होने के उपरान्त महामण्डलेश्वर जी महाराज से इस तीर्थयात्रा-ट्रेन मार्च में जाने के लिए दो वर्ष से इच्छुक तीर्थ यात्रियों ने कई कठिनाइयाँ बतायीं, यथा-विद्यार्थियों की परीक्षायें, किसानों द्वारा फसल की कटाई, व्यापारियों के व्यापार का अनुकूल सीजन तथा दक्षिण भारत के अधिकांश तीर्थों में पड़ने वाली उन दिनों की भयंकर गर्मी के साथ-साथ हरिद्वार व उज्जैन में मार्च व अप्रैल मासों में दो-दो अर्ध व पूर्ण कुम्भ मेले आदि अनेक कारण विस्तार से बताकर अपनी असमर्थता प्रकट की और इस वर्ष सन् १९८० के दिसम्बर मास में ही इस यात्रा ट्रेन को ले जाने का निर्णय किया है।

अस्तु हमारी अखिल-भारतीय श्रीगीता-प्रचार-तीर्थयात्रा-ट्रेन में जाने वाले समस्त तीर्थ यात्रियों को इस लेख द्वारा हम यह सूचना सहर्ष प्रकाशित कर रहे हैं कि अब यह ट्रेन निश्चयात्मकरूप से बिना किसी रुकावट के आगामी दिसम्बर मास में अवश्य जावेगी। यात्रा-ट्रेन लगभग दो मास में छोटे-बड़े १०८ तीर्थों यथा—दिल्ली, कुरुक्षेत्र, अमृतसर, हरिद्वार, हृषीकेश, नैमिषारण्य, अयोध्या, प्रयाग, चित्रकूट, काशी, पशुपतिनाथ, (नेपाल) वैद्यनाथ धाम, गया, कलकत्ता, गंगासागर, भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी, साक्षीगोपाल, सिंहाचलम्, विजयवाड़ा, रेणुगुन्टा, तिरुपतिबालाजी, कांचीपुरम, विराट वामन, पक्षीतीर्थ, चिदम्बरम, कुम्भकोणम, तन्जौर, त्रिचनापल्ली, श्रीरंगम, जम्बुकेश्वर, मदुरा-मीनाक्षी, तिन्नेवली, कन्याकुमारी, विवेकानन्द शिला, रामेश्वरम, खुर्दबाड़ी, पण्ढरपुर, नासिक, पंचवटी त्र्यम्बकेश्वर, बम्बई, सूरत, डाकोर, गिरनार, सोमनाथ, प्रभासक्षेत्र, पोरबन्दर, सुदामापुरी द्वारिका, आबूरोड, श्रीनाथद्वारा, अजमेर, पुष्कर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, मथुरा, वृन्दावन आदि अनेक दुर्गम तीर्थों के साथ-साथ तीनों धाम, सप्तपुरी, अनेक ज्योतिर्लिंग एवं समस्त भारतमाता की परिक्रमा सम्पन्न होगी। विशेष विवरण के लिए निम्न पते पर पत्र-व्यवहार करें :—

व्यवस्थापक:—

श्री गीता-आश्रम, पो०—स्वर्गाश्रम, मार्ग—हृषीकेश, (उ०प्र०) टेलीफोन : १२९।



भारत-सेवाश्रम संघ नई दिल्ली के मंच पर श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ म०मं० श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज (गत नवम्बर सन् १९७९ में) विशेष वार्तालाप में व्यस्त हैं। मंच पर अनेक विद्वान सन्त विराजमान हैं।



'गीता-सन्देश' तथा 'गीता-आश्रम' के संस्थापक तथा संचालक अनन्तश्री विभूषित, **महामंडलेश्वर-**
श्री स्वामी वेदव्यासानन्द जी महाराज सरस्वती।